महाकविश्रीभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

(गवेषणात्मक भूमिका, हिन्दी अनुवाद, संस्कृत टीका
विशेष टिप्पणी तथा परिशिष्ट सहित)

-डॉ० गणेशदत्त शर्मा

22½

(2½)

महाकविश्रीभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

[गवेषणात्मक भूमिका, हिन्दी अनुवाद, संस्कृत–टीका
विशेष टिप्पणी तथा परिशिष्ट सहित]

व्याख्याकार
डॉ० गणेशदत्त शर्मा
एम० ए०, पी–एच० डी०, साहित्याचार्य
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
नानक चन्द एग्लो संस्कृत कालेज, मेरठ।

साहित्य भण्डार
शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक
सुभाष बाजार, मेरठ २५०००२

● प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
अध्यक्षः
साहित्य भण्डार,
मेरठ—२
दूरभाष : 0121 2656444 (कार्य०) 2423754

● संशोधित एवं परिवर्द्धित नवीन संस्करण

● बुक कोड० A०३६

● मूल्य : पैंतिस रुपये (३५.००)

मुद्रक : देवी ऑफसेट मेरठ।

समर्पण

स्वतन्त्रता सग्राम के अमर सैनिक स्वदेश, स्ववेष, स्वभाषा
व संस्कृति के अनन्य उपासक, वैकुण्ठवासी

पूज्यपितामह

श्री पण्डित नानक चन्द शर्मा
की पुण्य स्मृति में
संस्कृत प्रेमियों को—
लेखक की सादर तुच्छ भेंट।

चतुर्थ संस्करण के सम्बन्ध में—

स्वप्नवासवदत्तम् के चतुर्थ संस्करण को विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रथम-तीन संस्करण के स्वल्प समय में ही समाप्त होने एवं चतुर्थ संस्करण के प्रकाशन से ही इस पुस्तक की उपादेयता तथा लोकप्रियता व्यक्त होती है।

आशा है कि यह संस्करण विद्यार्थियों के लिये अधिक उपयोगी होगा। हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सहृदय सहयोगियों का सहयोग पहले की ही भांति मिलता रहेगा।

—प्रकाशक

भास-प्रशस्ति—

भास की गरिमा, अन्य कवियों की वाणी से

[१]

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

—जयदेव

× × ×

[२]

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।

—बाण

× × ×

[३]

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।

—राजशेखर

× × ×

[४]

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।

—दण्डी

× × ×

[५]

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तद्दावि रहुआरे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारिअन्दे अ आणनन्दो ।।

—वाक्पतिराज

× × ×

प्राक्कथन

कविताकामिनी के हास कविवर भास पर सुरभारती को गर्व है। भास प्रथम कलाकार है; जिन्होंने नाटचकला को कमनीयता प्रदान की। "स्वप्नवासवदत्तम्" भास की अमर कृति है। इसमें उदयन एवं वासवदत्ता की प्रणय-कथा को पल्लवित किया गया है। उदयन की कमनीय कथा बहुत प्राचीन काल से भारतीय परिवारों में प्रचलित रही है। महान् कवि कालिदास ने—

"प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्"

कहकर इसी तथ्य को पुष्ट किया है। उदयन एवं वासवदत्ता की प्रेम-कहानी वस्तुतः प्रणय-पथिकों के लिये एक आदर्श है। अतः "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक को मनीषियों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों की विभिन्न परीक्षाओं के पाठचक्रम में निर्धारित किया है।

"स्वप्नवासवदत्तम्" की अनेक टीकाएँ एवं व्याख्याएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन सबकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। परन्तु मुझे उनमें उस पद्धति के दर्शन नहीं हुए जोकि परीक्षा की दृष्टि से छात्रों के लिये उपयोगी हो और सुकुमारमति बाल-कलाकारों का भी मार्गदर्शन कर सके। इसी अभाव की पूर्ति के लिये मेरा यह तुच्छ प्रयास है।

मैंने इस व्याख्या-ग्रन्थ में मूल पाठ का हिन्दी अनुवाद तथा पद्यों की संस्कृत व्याख्या के अतिरिक्त—"विशेष" एवं "टिप्पणियों" का भी समावेश किया है। "विशेष" प्रत्येक पद्य के साथ ही दिये गये हैं और उनमें कलात्मक सौन्दर्य के साथ ही छन्द एवं अलङ्कारों का भी निर्देश है। टिप्पणियाँ अन्त में दी गई हैं और उसमें शब्दों की व्युत्पत्ति एवं यथासम्भव भावात्मक सौन्दर्य का उद्घाटन है। इस भाँति अनुवाद, व्याख्या, विशेष एवं टिप्पणी लिखते हुये यह प्रयत्न किया गया है कि ऐसा कोई भी स्थल शेष न रह जाए जिसके लिये छात्रों को अन्यत्र भटकना पड़े।

प्रस्तुत संस्करण की पूर्ति में मुझे "स्वप्नवासवदत्तम्" की अनेक पूर्ववर्ती टीकाओं व व्याख्याओं से पर्याप्त सहायता मिली है। अतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले उन सभी रचनाओं के रचयिताओं का मैं हृदय से आभारी हूँ। श्री अनन्तराम शास्त्री 'बेताल' द्वारा सम्पादित संस्करण मूलपाठ की दृष्टि से मेरा आदर्श रहा है। साथ ही श्री चन्द्रकेतु विद्यालङ्कार तथा अन्य के संस्करणों ने भी विभिन्न रूपों में मेरा मार्गदर्शन किया है। अतः इन तीनों को विशेष धन्यवाद।

मैंने इस पुस्तक में जो भी लिखा है वह मेरा कुछ नहीं है—केवल मात्र गुरुजनों की कृपा का फल है। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्ययन करते

हुए जिन गुरुजनों की मुझ पर असीम कृपा रही उनमें स्वर्गीय आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, श्रद्धेय डॉ० हरिदत्त शास्त्री, भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग डी० ए० वी० कॉलेज, कानपुर, आदरणीय नन्दकिशोर जी शास्त्री वेदान्ताचार्य, पूजनीय श्री छेदीप्रसाद जी व्याकरणाचार्य, अर्चनीय श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी एम० ए०, साहित्याचार्य एवं परम सम्माननीय श्री सत्यव्रत जी शास्त्री के नाम विशेष उल्लेखनीय है। मैं इन सबके लिये सदैव नतमस्तक हूँ। साथ ही मैं अपने जीवन में जिनके व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ वह है—"वीणापाणि के वरदपुत्र, सरलता की साक्षात् मूर्ति आचार्य श्री प्रभुदत्त स्वामी, जिन पर उत्तर भारत एवं विशेष रूप से उत्तर भारत के समस्त संस्कृत विद्यालयों को गर्व है। भारती के समर्थ पुत्र श्रद्धेय डॉ० चन्द्रभानु अकिंचन जिनमें विद्वत्ता, कविता एवं दार्शनिकता की त्रिवेणी का संगम है और अभ्यर्चनीय विद्वद्वर डॉ० दीपचन्द शास्त्री जी जिन पर संस्कृत एवं संस्कृति को नाज है तथा जो अटल विश्वास, दृढ़ निष्ठा एवं अमर सिद्धान्तों के धाम हैं।" मैं इन तीनों का ऋणी हूँ और इनके चरणों में अपना शीश नवाता हूँ।

इसी प्रसंग में श्री देवदत्त पाराशर प्राध्यापक गांधी स्मारक देवनागरी इण्टर कॉलिज परीक्षतगढ़, मेरठ एवं श्रीमति डॉ० रमा दुबलिश संस्कृत विभाग, रघुनाथ गर्ल्स कॉलिज, मेरठ के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपनी अनेक उपयोगी सम्मतियों द्वारा मेरा मार्ग-दर्शन किया है। इस पुस्तक की Press Copy तैयार करने में मेरे परमप्रिय छात्र श्री कन्हैया उपाध्याय एम० ए० तथा श्री विश्वनाथ पाण्डेय एम० ए० शास्त्री ने जो अथक परिश्रम किया है तदर्थ उन्हें धन्यवाद। यह दोनों उदीयमान नक्षत्र हैं। मैं सदैव इनके कल्याण एवं उन्नति की कामना करता हूँ। साथ ही मेरी आदरणीय बहिन श्रीमती शर्मा देवी ने इस व्याख्या के लिखते समय मुझे जो सहानुभूति एवं आत्मबल प्रदान किया तदर्थ आजीवन उनका ऋणी रहूँगा। यह पुस्तक मुद्रित रूप में प्रकाशित है। इसका सम्पूर्ण श्रेय साहित्य भण्डार, मेरठ के अध्यक्ष, संस्कृत के सतत क्रियाशील विनीत सेवक श्री रतिराम जी शास्त्री को है।

अन्त में—विनीत लेखक का यह प्रथम प्रयास सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। नीरक्षीर विवेकी समालोचकों का यह लेखक हार्दिक स्वागत करता है क्योंकि भविष्य में वे ही उसका मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।

—लेखक

विषयानुक्रमणिका

—।०।—

पद्याऽनुक्रमणिका

—:०:—

प्रस्तावना

भास का काल और कृतित्व

भास के नाटकों की उपलब्धि से पूर्व महाकवि शूद्रक का "मृच्छकटिक" नाटक संस्कृत साहित्य का प्राचीनतम नाटक माना जाता था किन्तु जब भास के प्राप्त तेरह नाटकों में से एक नाटक चारुदत्त भी मिला और उस नाटक का ही कथानक मृच्छकटिक में परिष्कृत एवं परिवर्द्धित रूप में दृष्टिगोचर हुआ तब साहित्य मर्मज्ञों ने चारुदत्त को ही प्रसिद्ध नाटक "मृच्छकटिक" का आधार स्वीकार कर लिया, इससे यह भासित होता है कि भास महाकवि शूद्रक से पूर्व अवश्य हो चुके थे। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार शूद्रक का शासन काल २२०-१९७ ई० पू० निश्चित है। इसीलिये इस नाटक की रचना द्वितीय अथवा तृतीय शताब्दी ई० पू० में हुई और जब 'चारुदत्त' मृच्छकटिक का आधार है तो निश्चित ही 'चारुदत्त' की रचना उसके भी पूर्व की है। अत: हम भास को तृतीया या चतुर्थ ई० पू० से इधर नहीं रख सकते।

महाकवि कालिदास ने अपने "मालविकाग्निमित्र" नाम के नाटक में भास का बड़े आदर से स्मरण किया है। इससे यह स्पष्ट है कि भास कालिदास से प्राचीन थे।

चाणक्य के अर्थशास्त्र में सिपाहियों को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करने के प्रसङ्ग में दो श्लोक मिलते हैं। इनमें से एक श्लोक भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटक में मिलता है। विद्वानों ने चाणक्य को ई० पू० ४०० में माना है। अतः भास ई० पू० ४०० से पहले ही होने चाहिये।

भास के नाटकों में अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। इससे यह व्यक्त होता है कि भास का जन्म पाणिनीय व्याकरण को सर्वमान्यता प्राप्त होने के पहले हुआ था। भास की प्राकृत कालिदास की प्राकृत की अपेक्षा प्राचीन मालूम पड़ती है।

भास के द्वारा प्रतिमा नाटक में उल्लिखित शास्त्र भी अतिप्राचीन जान पड़ते हैं। मानवीय धर्मशास्त्र उपलब्ध मनुस्मृति का परामर्श नहीं करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत योगशास्त्र के समय का ठीक पता नहीं चलता। यह भी एक अति प्राचीन शास्त्र प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ई० पू० ४०० से पहले प्रायः शास्त्रों की उत्पत्ति महेश्वर से मानने की चाल सी थी। पाणिनि के प्रत्याहार सूत्र भी माहेश्वराणि सूत्राणि कहलाते हैं। "माहेश्वर

योगशास्त्रम् के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि सम्भवत: भास को पतञ्जलि कृत योगशास्त्र का पता नहीं था। पतञ्जलि भास की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन है। बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र का उल्लेख यह सूचित करता है कि भास चाणक्य से पुराने थे। यदि वे चाणक्य की अपेक्षा अर्वाचीन होते तो वे बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र के आधार पर चाणक्य-कृत अर्थशास्त्र का उल्लेख करते। "प्राचेतस श्राद्ध कल्प का भी पता नहीं चलता। सम्भव है वह कोई अति प्राचीन ग्रन्थ रहा हो।

एक बार व्यास और भास में प्रतिष्ठा के लिये झगड़ा हुआ। निर्णय के लिये दोनों के ग्रन्थ अग्नि में डाल दिये गये। भास की विजय हुई। अग्नि ने भास के ग्रन्थ नहीं जलाये। इस किम्वदन्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि भास कालिदास की अपेक्षा बहुत प्राचीन थे क्योंकि इनके झगड़े की बात कालिदास के साथ न कह कर व्यास के साथ कही गयी है। इस कथा से यह भी प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में भास के ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध थे।

भास राजमहल और शाही जीवन से अच्छी तरह परिचित थे। वे स्वभाव से नम्र हाजिरजवाब और हास्यप्रिय थे। वे संलाप कला में निपुण थे। वे मनुष्य स्वभाव और प्रकृति के सौन्दर्य के दक्ष पारखी थे। सम्भवत: उनका जीवन सुखमय था। वे कर्तव्यपरायण पुत्र, ईमानदार पति और सन्तानप्रिय पिता थे।

भास के नाटक

श्री टी० गणपति शास्त्री ने भास के तेरह नाटक खोज निकाले हैं तथा उन्हें तिरुवन्तपुरीय संस्कृत ग्रन्थमाला (Trivendrum Sanskrit Servies) में प्रकाशित कराया। उन नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, दूतवाक्यं, प्रतिमानाटकं, पंचरात्रं, अभिषेक, मध्यमव्यायोग, अविमारक, कर्णभार, दूतघटोत्कच 'उरुभंग' बालचरित तथा दरिद्र चारुदत्त।

(१) स्वप्नवासवदत्तम् : राजा उदयन का वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन होता है। अतएव इसका नाम स्वप्नवासवदत्तम् रखा।

(२) प्रतिमानाटक : की कथा रामायण के आधार पर है। मामा के घर से लौट आने पर देवकुल में दशरथ की प्रतिमा का दर्शन सर्वप्रथम भरत करता है। इसी प्रतिमा के कारण नाटक का नाम प्रतिमा नाटक पड़ा।

(३) पंचरात्र : महाभारत के आधार पर लिखा गया है। दुर्योधन यज्ञ करता है, यज्ञ पूरा होने पर द्रोणाचार्य को दक्षिणा देता है। साथ में यह भी शर्त रखता है कि पाँच रात्रि में पाण्डवों का पता लगा लिया जाये, द्रोणाचार्य स्वीकार कर लेते हैं। इसलिये इसका नाम पंचरात्रं पड़ा।

(४) अभिषेक नाटकं : रामायण पर ही आश्रित है। इसमें राम के अभिषेक तक की कथा है।

(५) मध्यमव्यायोग : पाण्डवों के वनवास काल में भीम द्वारा घटोत्कच के पंजे से एक ब्राह्मण बालक की मुक्ति का वर्णन है। व्यायोग नामक रूपक भेद है। मध्यम उस बालक और भीम का बोधक है।

(६) कर्णभार : द्रोणाचार्य के मर जाने पर कौरवों की तरफ से कर्ण सेनापति नियुक्त होता है तथा युद्ध का भार कर्ण पर पड़ता है। अतएव इसका नाम कर्णभार पडा।

(७) दूतवाक्य में पाण्डवों की तरफ से दूत की तरह सन्देश ले जाते हुये श्रीकृष्ण का वर्णन है। इसीलिये दूतवाक्य इसका नाम पड़ा।

(८) दूतघटोत्कच में घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का सन्देश ले जाते हैं। यह घटना महाभारत में नहीं मिलती तथा इसमें अन्त में भरतवाक्य भी नहीं मिलता।

(९) उरुभङ्ग : भीम द्वारा दुर्योधन के उरु-भङ्ग की कथा है। इसमें दुर्योधन एवं भीम के बीच गदायुद्ध का वर्णन है।

(१०) बालचरित में श्रीकृष्ण लीला का वर्णन है।

(११) अविमारक में राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी एवं सौवीरराम के पुत्र विष्णुसेम के विवाह का वर्णन है। सम्भव है वह किसी परम्परागत आख्यायिका से ली हो गई। अविमारक इस नाटक के विष्णुसेन का दूसरा नाम है। विष्णुसेन ने एक बार अविमारक भेड रूपधारी राक्षस को मारा था। अतएव उसका नाम अविमारक पड़ा तथा नाटक का नाम भी यही पड़ गया।

(१२) चारुदत्त : ब्राह्मण चारुदत्त एवं वेश्या वसन्तसेना की प्रेम-लीला का वर्णन है। नायक के नाम पर नाटक का नाम चारुदत्त रखा है।

(१३) प्रतिज्ञायौगन्धरायण में वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का हरण करने का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिये जाने पर मन्त्री यौगन्धरायण उदयन को छुड़ाने एवं वासवदत्ता का विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसलिये इसका नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण रखा गया है।

भास के नाटक पांच भागों में विभक्त हो सकते हैं। महाभारताश्रित नाटक, रामायणाश्रित नाटक, कृष्णलीला वाले, उदयन की कथा वाले तथा कल्पित कथाओं वाले नाटक। जिनमें अभिषेक, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमा, अविमारक और "बालचरित" "नाटक" नाम के रूपक के उदाहरण हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण इहामृग है। चारुदत्त प्रकरण है। कर्णभार, उरुभंग दूतघटोत्कच ये अङ्क के उदाहरण हैं। मध्यमव्यायोग एक व्यायोग है। पंचरात्र समवकार एवं दूतवाक्य विधि के उदाहरण हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि भास के नाटकों में से स्वप्नवासवदत्तम् भास का है और अन्य नहीं। क्योंकि अभिनवगुप्त, राजशेखर आदि ने उसका उल्लेख किया है। यह क'ना भी ठीक नहीं, क्योंकि भास के नाम पर प्रचलित नाटकों के अध्ययन करने पर पता चलता है कि सब नाटक एक ही कवि की रचना हैं। सब नाटकों पर एक पुरुष के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। भास के नाम पर प्रचलित नाटक नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः से आरम्भ होते हैं। इसके बाद सूत्रधार मंच पर आ जाता है और मङ्गलपाठ करता है। सब नाटकों में प्रस्तावना स्थापना के रूप में कही गई है। भरतवाक्य में प्रायः—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंह प्रशास्तु नः।

पद्य मिलता है। भरत नाट्यशास्त्र में दिये नाटकों के रचना काल सम्बन्धी नियमों की प्रचलित नाटकों में प्रातः अवहेलना दिखाई पड़ती है। आकाशभाषित का ज़्यादा प्रयोग दिखाई पड़ता है। भाषा, छन्द, भाव, कल्पना और घटना आदि प्रायः सभी नाटकों में सदृश हैं। ये विशेषतायें यह बताती है कि सब नाटक एक ही कवि की लेखनी से आये हैं। ऐसी अवस्था में यदि स्वप्नवासवदत्तम् भास का है तो अन्य नाटक भी भास के ही हैं। कुछ का कहना है कि रीति ग्रन्थों में स्वप्नवासवदत्तम् के जो उदाहरण प्राप्त होते हैं वे प्रकाशित नाटकों में नहीं मिलते। इस कारण से प्रचलित नाटक भास की रचना नही मानी जा सकती, यह भी ठीक नहीं। क्योंकि भरत नाट्यशास्त्र की टीका में अभिनवगुप्ताचार्य ने क्वचित् क्रीड़ा तथा वासवदत्तायाम् कहकर कन्दुक क्रीड़ा का परामर्श किया है।

(१) सागर नन्दिन ने अपने नाटक लक्षण रत्नकोश में स्वप्न नाटक की स्थापना से एक उदाहरण दिया है। यह उदाहरण छपे नाटक में लेख से नहीं मिलता है परन्तु इसे पढ़ने से मालूम होता है कि मानो लेखक मूल ग्रन्थ के अंश का अपने शब्दों में सारांश दे रहा है।

(२) भोजदेव ने शृङ्गारप्रकाश एवं भावप्रकाश में जो कुछ लिखा है वहं भी यत्र-तत्र भाषा को छोड़कर स्वप्न नाटक के छपे हुये पाठ से मिलता है। उपर्युक्त लेख से यही स्पष्ट होता है कि सब स्वप्नवासवत्ताम् का परामर्श कर रहे हैं।

रीति ग्रन्थों में प्राप्त उदाहरणों में से कुछ छपे स्वप्न नाटकों में मिलते हैं। कुछ कवि की भाषा जैसा सारांश मालूम पड़ते हैं। इस प्रकार छपा हुआ स्वप्न नाटक भास कवि का ही सिद्ध होता है

भास की शैली

भास की शैली बहुत सीधी सादी है। ये बड़े-बड़े समस्त पदों का प्रयोग

नहीं करते । इनकी भाषा मुहावरेदार और प्रभावोत्पादक है । स्वाभाविक प्रवाह है ।

उक्ति प्रत्युक्तियाँ नाटक का प्रधान अङ्ग हैं । उक्ति प्रत्युक्ति द्वारा ही नाटक का कथानक आगे बढ़ता है । भास की उक्ति प्रत्युक्तियाँ स्वाभाविक, सरल, प्रभावोत्पादक हैं । वह उन्हीं उक्तियों में छन्द का प्रयोग करते हैं । छन्द दो विभागों में बांट देते हैं । पूर्वार्द्ध एक पात्र तथा उत्तरार्द्ध दूसरे पात्र से कहलवाते हैं । इस प्रतिभा से पात्रों में हाजिरजवाबी झलकती है । भास के अपने निराले उक्ति-प्रकार हैं । यथा स्वीकृति के लिये "आम्" 'बाढ़म्' का प्रयोग 'यदि' 'चेत्' दोनों का एक साथ प्रयोग तथा कुशल प्रश्न के लिये सुखमार्यस्य इत्यादि प्रयोग ।

भास के श्रेष्ठ वर्णन

भास की वर्णन-शक्ति बड़ी प्रबल है । ये जिस पदार्थ को देखते हैं उसकी विशेषताओं को शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं । किसी भी वस्तु की किन विशेषताओं का वर्णन करना चाहिये इसका निर्णय करने में ये बड़े निपुण हैं । वर्णनीय विशेषताओं का निर्णय करके ये उन्हें सरल भाषा में सीधे कह देते हैं । इनका किया किसी भी पदार्थ का वर्णन उस पदार्थ के चित्र को आँखों के सामने खड़ा कर देता है । इनके स्वप्नवासवदत्तम् में सायंकाल का वर्णन देखिये—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ।। (१/१६)

उपर्युक्त पद्य में सायंकाल के समय तपोवन में होने वाली उल्लेख योग्य सभी बातें आ गयी हैं । इसे पढ़ते समय ऐसा अनुभव होता है मानो शाम हो गयी है और हम किसी तपोवन में खड़े हैं ।

भास ने 'स्वप्न नाटक' में तपोवन का वर्णन इस प्रकार किया है—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ।। (१/१२)

भास के तपोवन के वर्णन को पढ़कर "अभिज्ञानशाकुन्तल" में वर्णित कालिदास के तपोवन के अभोग का स्मरण आ जाता है। स्वच्छन्द घूमने वाले हरिण दोनों को आकृष्ट कर रहे हैं । "प्रतिमानाटक" के रथ-वेग के वर्णन पर ध्यान दीजिये—

द्रुवा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।
अर-व्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलय
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥

भास के रथ-वेग वर्णन का कालिदास के रथ-वेग वर्णन से मिलान कीजिये। भास की अरव्यक्ति नष्ट हो रही है तो कालिदास को अरों के बीच में दूसरे अर उत्पन्न होते दिखायी देते हैं । 'चक्रभ्रान्तिरान्तरेषु वितनोत्यन्तामिवारावलीम्' विक्रमोर्वशीयम् । घोड़ों के टापों से उड़ती हुई धूल पर दोनों महाकवियों का ध्यान गया है । 'स्वषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्य:—शाकुन्तलम् । 'अविमारक' में आकाश से पृथ्वी के दृश्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

शैलेन्द्रा: कलभोपमा जलधय: क्रीडातटाकोपमा
वृक्षा: शैवलसन्निभा: क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।
सीमन्ता इव निम्नगा: सुविपुला: सौधाश्च बिन्दूपमा
दृष्टं वक्रमिवाभिभाजि सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥

आकाश से धरातल के दृश्य यह वर्णन 'शाकुन्तल' में इन्द्र के रथ पर बैठे आकाश से उतरते समय राजा के द्वारा किये 'शैलानामवरोहतीव शिखरात्' इत्यादि भूतल के वर्णन का स्मरण दिलाता है। भास 'प्रतिमानाटक' में परित्यक्त अयोध्या का वर्णन करते हुये कहते हैं—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखा सास्रेक्षणा वाजिनो
ह्रेषाशून्यमुखा: संवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जना: ।
त्यक्ताहारकथा: सुदीनवदना: क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥

अयोध्या नगरी रो रही है । सब प्राणी जिधर राम जा रहे हैं उसी दिशा की तरफ देख रहे हैं । इस पद्य से करुण रस का आस्वाद होता है । भास ने कई स्थानों पर समुद्र का सुन्दर वर्णन किया है । 'अभिषेकनाटक' में वे कहते हैं—

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजल:
क्वचिच्छङ्खाकीर्ण: क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभ: ।
क्वचिद् वीचीमाल: क्वचिदपि च नक्रप्रतिभय:
क्वचिद् भीमावर्त: क्वचिद्पि च निष्कम्पसलिल: ॥

समुद्र की प्राय: सभी विशेषतायें स्पष्ट शब्दों में गिना दी गयी हैं । इस वर्णन के पढ़ते ही समुद्र-चित्र आँखों के सामने खड़ा हो जाता है । 'उरुभङ्ग' में भास ने युद्ध-यज्ञ का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

कविवरकरयूपो बाणविन्यस्तदर्भो हतगजचयनोच्चैर्वैरवह्निप्रदीप्त: ।
ध्वजविततवितान: सिंहनादोच्चमन्त्र: पतितपतिमनुष्य: संस्थितो युद्धयज्ञ: ॥

यह युद्ध यज्ञ का वर्णन 'चत्वारो वयमृत्विज: भगवान्' इत्यादि भट्टनारायण के रण-यज्ञ का स्मरण दिलाता है ।

स्वप्नवासवदत्तम् की कथा श्री कान्तानाथ जी तैलङ्ग के शब्दों में—

प्रथम अङ्क की कथा

प्रथम अङ्क में वत्सराज उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण स्वयं परिव्राजक वेष धारण कर आवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता के साथ तपोवन में आता है। इतने में मगध राजकुमारी पद्मावती का कञ्चुकी घोषणा करता है कि—जिसे जो कुछ मांगना हो वह आवे और राजकुमारी से मांगे। यौगन्धरायण वासवदत्ता के साथ पद्मावती के सामने जाता है। वह वासवदत्ता का अपनी भगिनी के रूप में परिचय देता है। पद्मावती से वासवदत्ता को कुछ काल तक अपने संरक्षण में रख लेने की प्रार्थना करता है। पद्मावती कञ्चुकी के द्वारा अपनी स्वीकृति देती है। इस पर यौगन्धरायण अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। इतने में एक ब्रह्मचारी वहाँ आता है। वह तपोवन के लोगों को वासवदत्ता के वियोग से दुःखी राजा उदयन का वृत्तान्त बताता है। इसके बाद ब्रह्मचारी चला जाता है। अनुमति पाकर यौगन्धरायण भी चला जाता है। तापसी का आशीर्वाद लेकर पद्मावती और वासवदत्ता पर्णशाला में प्रवेश करती हैं।

द्वितीय अङ्क की कथा

द्वितीय अङ्क के प्रवेशक में चेटी आकर पद्मावती के गेंद खेलने का समाचार देती है। शीघ्र ही धात्री आकर मगधराज द्वारा उदयन को पद्मावती के दिये जाने तथा उदयन द्वारा उसके स्वीकार किये जाने का शुभ समाचार देती है। इसके बाद एक चेटी आती है। वह पद्मावती के कौतुक मंगल की तैयारी की सूचना देती है और वासवदत्ता को मङ्गल स्थान की तरफ जल्दी चलने को कहती है।

तृतीय अङ्क की कथा

तृतीय अङ्क में उदयन के पास पद्मावती के विवाह के वृत्तान्त से कुछ दुखी वासवदत्ता प्रमदवन में अपने मन को सान्त्वना देती हुई प्रवेश करती है। इतने में एक चेटी कुछ फूल लेकर वहाँ आती है। वह वासवदत्ता से पद्मावती के विवाह के लिये कौतुक मालिका तैयार करने को कहती है वासवदत्ता सुन्दर हार तैयार करती है। दूसरी चेटी आकर हार ले जाती है। इधर वासवदत्ता उदयन के द्वितीय विवाह को सुनकर दुखित होती है और दुःख को भुलाने हेतु शयनागार में जाती है।

चतुर्थ अङ्क की कथा

चतुर्थ अङ्क के प्रवेशक में विदूषक अपनी अस्वस्थता पर चिन्ता तथा राजा के विवाह पर प्रसन्नता प्रकट करते हुये प्रवेश करता है। इतने में चेटी प्रवेश करती है और यह भी पूछती है कि राजा उदयन का स्नान हुआ या नहीं। उसके स्नान का समाचार विदूषक से पाकर वे दोनों चले जाते हैं। आगे अंक में प्रमदवन में वासवदत्ता पद्मावती दोनों वार्तालाप करती रहती हैं। इसी समय दोनों की भावना

राजा के प्रति मालूम पड़ती है। इतने में राजा और विदूषक वहाँ आते हैं। उन्हें देखकर पद्मावती वासवदत्ता दोनों लता मण्डप में चली जाती है। प्रचण्ड सूर्य के होने से राजा और विदूषक लता मण्डप में जाना चाहते हैं। इतने में चेटी लता को झकझोर कर भौंरों को उड़ाती है। आखिरकार वे दोनों ही बैठकर बातें करते हैं। उन दोनों की बातों को वे दोनों वासवदत्ता और पद्मावती ध्यान से सुनती हैं। विदूषक के पूछने पर कि दोनों में कौन अधिक प्यारी है? राजा कुछ टालने लगता है। आग्रह करने पर रूप, गुण, सौन्दर्य के द्वारा पद्मावती की प्रशंसा करता है तथा यह भी कहता है कि वह मेरे मन से वासवदत्ता को नहीं भुलवा सकी है। इस पर पद्मावती राजा की तारीफ करती है। फिर राजा विदूषक से भी यह पूछता है तथा आगा-पीछा करते हुए वह वासवदत्ता को सम्मान का पात्र मानता है और पद्मावती की प्रशंसा करता है। इस परिहास से स्मृति ताजी होने से राजा की आँखों में आँसू आ जाते हैं तथा विदूषक पानी लेने जाता है। वासवदत्ता अवसर पाकर पद्मावती को राजा के पास भेजकर चली जाती है। आँसू के कारण पूछने पर राजा आकाश कुसुम की धूलि का पड़ना ही कारण बताता है। विदूषक के कहने पर कि "अपराह्न में मगधराज आपसे सम्भवतः मिले" सब चले जाते हैं।

पञ्चम अङ्क की कथा

पञ्चम अङ्क में पद्मिनिका और मधुरिका आती हैं तो वार्तालाप से मालूम होता है कि पद्मावती शीर्ष-वेदना से पीड़ित है। उसके लिये समुद्रगृह में शयन बिछाई गई है और मधुरिका कहती है कि जाओ अवन्तिका (वासवदत्ता) को भेजो वह मनोहितकर कथाओं से वेदना शान्त करेगी। वह मधुरिका के चले जाने पर विदूषक को ढूंढती है। उसके मिलने पर पद्मावती की अस्वस्थता का समाचार राजा को बताने के लिये कहकर शीर्षानुलेप लेने चली जाती है। प्रवेशक के बाद पंचम अंक में वासवदत्ता के वियोग में दुखित राजा मंच पर आता है तथा पद्मावती की अवस्था का समाचार सुनकर विदूषक और राजा समुद्रगृह की ओर जाते हैं। वहाँ पर वह न पाकर राजा पद्मावती की प्रतीक्षा में शय्या पर लेट जाता है। और सो जाता है। विदूषक दुपट्टा लेने चला जाता है। कुछ क्षण पश्चात् अवन्तिका के साथ चेटी आती है। चेटी वासवदत्ता को समुद्रगृह का मार्ग दिखाकर शीर्षलेप लाने जाती है। वह उसे पद्मावती समझकर उसके पास लेट जाती है। परन्तु यह मालूम होने पर कि वह राजा है, वह उठ बैठती है। इधर राजा भी स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है। प्रणय भरे वाक्य उससे बोलता है। फिर यह सोचकर कि उसे वहाँ कोई देख न ले, राजा के लटकते हुये हाथ को रखकर वह चली जाती है। राजा भी सहसा उसी के पीछे भागता है। भागते समय वह ड्योढी से टकराता है इतने में विदूषक आता है। राजा वासवदत्ता के जीवित होने की सम्भावना करता है। इस पर विदूषक कहता है कि शायद स्वप्न में देखी होगी। राजा महल में हैं। इतने में कञ्चुकी आकर दर्शक का सन्देश सुनाता है।

षष्ठ अङ्क की कथा

षष्ठ अङ्क में महासेन प्रद्योत का रैभ्य नामक कञ्चुकी राजा को सन्देश देने आता है। प्रतीहारी के यह कहने पर कि राजा को बताओ कि कञ्चुकी और धाई आए हैं। इस पर वह असमर्थता प्रकट करता है। वह कहता है कि घोषवती वीणा के मिलने पर राजा को वासवदत्ता का दुःख ताजा हो गया है। अन्ततोगत्वा वह राजा से उसका सन्देश पहुंचाने चला जाता है। राजा विलाप करता हुआ प्रवेश करता है। विदूषक उसे समझाता है और राजा उसे घोषवती वीणा ठीक करने हेतु भिजवा देता है। कञ्चुकी के सन्देश देने पर वह उन्हें बुलाने की आज्ञा देता है उसी समय पद्मावती भी आती है तथा वे दोनों आकर यह सन्देश राजा को सुनाते हैं कि महासेन ने वासवदत्ता का चित्र बनाकर ही आपसे विवाह कर दिया है। यह कहकर चित्र राजा को देता है। वह पद्मावती उस चित्र को देखकर अवन्तिका को याद करती है। इस पर राजा अवन्तिका को लाने की आज्ञा देता है। तब ही यौगन्धरायण अपनी बहन को माँगने के लिये आता है। पद्मावती भी अवन्तिका को लेकर आती है। महासेन की धाई उसे पहचान लेती है। यौगन्धरायण भी पहचान लिया जाता है और सर्वत्र आनन्द छा जाता है।

नाटक का नाम

इस नाटक का नाम स्वप्नवासवदत्तम् है। यह नाम नाटक की एक कथा की घटना विशेष के आधार पर रखा गया है। इस नाटक के पञ्चम अङ्क में राजा शीर्ष-वेदना से पीड़ित पद्माती को देखने समुद्रगृह में जाता है। वहाँ उसे न पाकर प्रतीक्षा हेतु वह वहाँ पर लेट जाता है। तत्काल ही निद्रा आ जाती है। कुछ क्षण बाद वासवदत्ता भी पद्मावती के उपचार हेतु समुद्रगृह में ही आती है तथा उसे पद्मावती समझ कर वहाँ पर लेट जाती है तथा कुछ क्षण पश्चात् उसे राजा समझकर उठ बैठती है। उसी समय राजा भी स्वप्न में उसे देखता है। वह संकोचवश गिरे हुए राजा के हाथ को उठाकर चली जाती है। राजा भी उसी के पीछे भागता है। फिर वह द्वार पक्ष से टकरा कर रुक जाता है। प्रकृत नाटक में यह बड़ी सरस घटना है।

प्रस्तुत नाटक की संज्ञा पर यह प्रश्न उठता है कि आरुणि द्वारा छीने गये राज्य की पुनः प्राप्ति हेतु वासवदत्ता राजा से अलग की गई थी। आरुणि द्वारा राज्य छीने जाने पर यौगन्धरायण आदि चिन्तित थे। इसी बीच भविष्य वक्ताओं ने यह घोषणा की कि मगधराज दर्शक की पुत्री पद्मावती उसकी पत्नी होगी। इस घोषणा से मन्त्री का प्रश्न सुलझ गया। उसने सोचा कि यदि पद्मावती का विवाह राजा से हो सके तो मगधराज की सहायता से आरुणि से छीने हुए राज्य को वापिस ले लेंगे। परन्तु वासवदत्ता के रहते राजा पुनर्विवाह हेतु तैयार न था। क्योंकि

उससे वह प्रेम करता था। अतएव उसे अलग करना ही ठीक समझा। यह रहस्य वासवदत्ता को ही मालूम था। ऐसी स्थिति में खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति ही नाटक का मुख्य कार्य है, ऐसी जानना चाहिये। इसके आधार पर इसका नाम उदयनोदयम् नहीं रखा गया।

स्वप्नवासवदत्तम् का नाम पद्मावती परिणयम् भी उचित नहीं क्योंकि उदयन के साथ पद्मावती का विवाह भी इस नाटक का मुख्य कार्य नहीं है। न उदयन ही पद्मावती पर आसक्त है, न पद्मावती ही राजा से विवाह करने को उत्सुक है। पद्मावती का विवाह माता-पिता द्वारा स्थिर किये जाने वाले विवाह के प्रकार की नीरस घटना है। इसके अतिरिक्त यदि उक्त घटना को इस नाटक का मुख्य कार्य माना जाये तो नाटक तृतीय अङ्क में ही समाप्त हो जायेगा। परन्तु यह नाटक तो ६ अङ्कों तक चला जाता है। अतः इस नाटक को पद्मावती-परिणय नहीं कहा जा सकता।

स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन के आधार पर जो नाम दिया है वह बिल्कुल ठीक है।

उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती

स्वप्नवासवदत्तम् के मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण

राजा उदयन

राजा उदयन वत्स देश का राजा है। देखने में अत्यन्त रूपवान् है। यह वीणा बजाने की कला का पण्डित है। इसी ने वासवदत्ता को वीणा बजाना सिखाया है। इसकी इस कला के पाण्डित्य की ख्याति सर्वत्र फैल चुकी है। पद्मावती की चेटी यह बात जानती है। राजा शिकार का भी शौकीन है। राजा के शिकार खेलने चले जाने पर ही यौगन्धरायण को लावाणक स्थित राजभवन के दाह का नाटक कर वासवदत्ता को हटाने का अवसर मिलता है। उदयन के पुत्र नहीं है। इसी कारण वासवदत्ता के जल मरने का विश्वास हो जाने पर वह दूसरा विवाह करने को राजी हो जाता है। परन्तु यौगन्धरायण तो खोये राज्य की पुनः प्राप्ति के लिये राजा के दूसरे विवाह की व्यवस्था करता है। सम्भवतः उदयन तीस और चालीस वर्ष के बीच की उम्र का युवक प्रतीत होता है। एक स्त्री के मर जाने पर सन्तान के लिये दूसरे विवाह की बात तीस वर्ष से अधिक उम्र का समर्थन करती है। प्रायः तीस वर्ष तक तो पुरुष को सन्तान का विचार ही मन में नहीं आता। इसी प्रकार स्त्री के रहते यदि चालीस वर्ष तक सन्तान न हो तो आगे इसकी आशा कम हो जाती है। इसलिये राजा की उम्र इन्हीं दोनों सीमाओं के बीच होनी चाहिये।

उदयन गुरुजनों का आदर करता है। षष्ठ अङ्क में जब प्रतीहारी राजा को प्रद्योत महासेन के दरबार से आये हुए कञ्चुकी और धात्री का समाचार देती है तो वह उद्विग्न हो जाता है। वह कहता है, "मैं राजा प्रद्योत की लड़की वासवदत्ता को उड़ा तो लाया पर उसकी रक्षा न कर सका। अतः जिस प्रकार अपने दुराचरण से पिता को रुष्ट करने पर पुत्र पिता से डरता है, उसी प्रकार मुझे राजा प्रद्योत से डर लग रहा है। इस उक्ति से यह स्पष्ट है कि उदयन अपने श्वसुर को अपने पिता के समान मानता है। वह अपने कर्त्तव्य को समझता है और जो अपराध हो गया है उसकी जिम्मेदारी स्वीकार करता है। वह अनुभव करता है कि उसके हाथ से अपराध हो गया है। यह बहुत बड़ी बात है। उदयन राजा प्रद्योत के दरबार से आये कञ्चुकी और धात्री का आदर करता है और प्रद्योत का सन्देश सुनते समय खड़ा हो जाता है। वह महासेन की रानी के लिये माता शब्द का प्रयोग करता है।

उदयन धीरललित वर्ग का नायक है। धीरललित नायक के विषय में दर्पणकार ने लिखा है—"निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ।" उदयन में ये सब गुण मिलते हैं। इसने राज्य का सारा भार अपने मन्त्रियों, यौगन्धरायण और रुमण्वान् पर छोड़ दिया है। इस प्रकार यह झंझटों से निश्चिन्त हो गया है। इसका स्वभाव बहुत कोमल है। इसे क्रोध आता हुआ तो कभी दिखाई

ही नहीं देता। यह वीणा बजाने और शिकार की कला में निपुण है। शत्रु ने इसके राज्य का बहुत बड़ा भाग छीन लिया है। परन्तु इसे उसको प्राप्त करने की कोई चिन्ता नहीं दिखाई देती। इतना सब होते हुए भी इसमें शौर्य का सर्वथा अभाव नहीं है। जब राजा दर्शक का कञ्चुकी खबर देता है कि अमात्य रुमण्वान् ने शत्रु पर आक्रमण कर दिया है और मगध की सेना भी आपकी सहायता के लिये तैयार है तो वह झट खड़ा हो जाता है और कहता है—"उपेत्य नागेन्द्र तुरंगतीर्णे॥ इत्यादि।

वासवदत्ता

वासवदत्ता एक सती नारी है। वह परपुरुष दर्शन नहीं करती। प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी के तपोवन में प्रवेश करने पर वह लजाते हुए "है" कहकर अपनी अरुचि प्रकट करती है। उसी समय पद्मावती कहती है—"अम्मो ! परपुरुष दर्शनं परिहरत्यार्या" इस घटना से पद्मावती को विश्वास हो जाता है कि वासवदत्ता की रक्षा करना कठिन नहीं है।

वासवदत्ता के हृदय में राजा के प्रति अपार प्रेम है। प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी के मुख से राजा के मूर्च्छित होने की बात सुनकर वह रोने लगती है और अपने मन में दुःख से कहती है कि अब यौगन्धरायण का मनोरथ पूर्ण हो।

कवि ने वासवदत्ता को एक आदर्श सौत के रूप में चित्रित किया है। उसे पद्मावती को देखकर डाह नहीं होती। प्रथम अङ्क में राजा के साथ पद्मावती के भावी विवाह का समाचार सुनकर वह उसे आत्मीय समझने लगती है।

भारतीय दृष्टि से वासवदत्ता परिणीता होने के कारण राजा की स्त्री है। उसमें मध्यमा के गुण दिखायी देते हैं। वह स्वभाव से धीरा वर्ग की नायिका है।

यौगन्धरायण

यह वत्सराज उदयन का मन्त्री और राजनीति में चाणक्य के तुल्य दूरदर्शी है। यह नाटक का एक प्रकार से केन्द्रबिन्दु है। यह एक पूर्ण स्वामिभक्त मन्त्री है। स्वामी तथा राज्य के हित के लिये सर्वस्व त्याग कर सकता है। स्वामी के लिये यह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनेक प्रकार की आपत्तियों को सहन करता है। स्वयं उदयन ने उसकी प्रशंसा की है—

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः॥६/१८

यौगन्धरायण एक प्रखर, प्रज्ञावान् तथा कार्य-कुशल व्यक्ति है। जब पद्मावती दान की घोषणा करती है वह तुरन्त अर्थी बनकर उपस्थित हो जाता है। और इसी के बल पर वासवदत्ता पद्मावती के पास गुप्त रूप में रहती। है उसी की प्रज्ञा का परिणाम है जो उदयन का राज्य उन्हें पुनः प्राप्त हो जाता है।

उसमें दूसरे के गुणों की पहचान करने की अद्‌भुत क्षमता है। रुमण्वान् के किये गये परिश्रम को सुनकर वह उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है।

अहो महद्‌भारमुद्वहति रुमण्वान् कुतः—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥ (१/१५)

यह है उसकी गुणग्राहकता ।

समस्त नाटक में यद्यपि यौगन्धरायण के दर्शन केवल दो ही स्थलों पर होते हैं तथापि हम उसे एक प्रकार से नाटक का वह सूत्र कह सकते हैं कि जिसमें से पूरे नाटक की एक-एक घटना की व्याख्या निकलती है ।

विदूषक

नाटकों में विदूषक हास्य रस का पात्र होता है । यह प्रायः जाति का ब्राह्मण होता है । कभी-कभी यह नायक से उम्र में छोटा भी होता है इसका प्रायः पुष्प-वाचक या ऋतु-वाचक नाम रखा जाता है । इसका शरीर विकृत आकार का होने के कारण हास्यजनक होता है । इसका वेश, भाषा और कार्य भी हास्यकर होते हैं । इसे लड़ाई लगाने में बड़ा आनन्द आता है । यह नायक का नर्म सचिव होता है । नायक के नायिका से प्रेम-मिलन की व्यवस्था करने के अपने काम में यह बड़ा निपुण होता है । यह कुपित नायिका को समझा बुझाकर नायक के अनुकूल बनाने में पण्डित होता है । कवि प्रायः इसे भुक्कड़ के रूप में चित्रित करते हैं । इसे खाने पीने की बातों में बड़ा आनन्द आता है । स्वयं यह चरित्र का शुद्ध होता है । हँसी की बात जाने दीजिये, स्वयं सचमुच किसी स्त्री से प्रेम सम्बन्ध जोड़ने की फिराक में नहीं दिखाई देता । यह नायक का सच्चा भक्त होता है । ऊपर से देखने में यह भले ही बेवकूफ मालूम हो, भीतर से प्रायः यह बुद्धिमान होता है । इसकी सूझ-बूझ बड़ी दूर की होती है । यह दूसरों को तो खूब हँसाता है परन्तु शायद स्वयं कभी ही हँसता हो । किसी किसी विदूषक को एक सखुन तकिया होती है । जिसका वह बार-बार प्रयोग करता है । जैसे "शाकुन्तल" का विदूषक दास्याः पुत्रैः शब्द का प्रयोग करता है । शृङ्गार रस के प्रायः सभी नाटकों में विदूषक होता है । परन्तु भवभूति के "मालतीमाधव" में रस शृङ्गार होने पर भी विदूषक का अभाव है । स्वप्नवासवदत्तम् के विदूषक का नाम वसन्तक है । यह बड़ा सुकुमार है । न अधिक गर्मी सह सकता है न सर्दी ।

यह राजा का नर्म सचिव है । यह उसका बड़ा मुँह लगा है । अभिज्ञान-शाकुन्तल के विदूषक की तरह यह भी कभी-कभी "दास्याः पुत्रैः" कहता है । यह बहुत-सी कहानियाँ जानता है, परन्तु इसका ज्ञान उलटा-पुलटा है । यह बड़ा मुखर है ।

———

स्वप्नवासवदत्तम् में रस-अलङ्कार और छन्द

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक शृङ्गाररस परिपूर्ण है। राजा उदयन के खोये हुये राज्य की पुनः प्राप्ति के लिये वासवदत्ता उससे अलग की जाती है और पद्मावती के साथ उसका विवाह होता है। वासवदत्ता और राजा के सम्बन्ध की दृष्टि से इस नाटक का रस विप्रलम्भ पूर्वक संभोग शृङ्गार हैं। पद्मावती और राजा के सम्बन्ध की दृष्टि से विप्रलम्भ शृङ्गार नगण्य है। संभोग शृङ्गार का भी अनुभव अपूर्ण और अस्पष्ट ही रह जाता है। वासवदत्ता के सम्बन्ध के शृङ्गार का भी पूर्ण परिपाक नहीं हो पाया। हाँ पद्मावती के सम्बन्ध के शृङ्गार की अपेक्षा वासवदत्ता के सम्बन्ध के शृङ्गार का कुछ अधिक आस्वाद होता है। विचार करने पर यही कहना पड़ता है कि अङ्गीरस की दृष्टि से यह नाटक ढीला-ढाला है।

इस नाटक में अङ्गीरस शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों और भावों की भी अङ्ग रूप से यत्र-तत्र चर्वणा होती है। प्रथम अङ्क के आरम्भ में राजपुरुषों द्वारा की जाने वाली उत्सारणा के बाद यौगन्धरायण और वासवदत्ता के बीच जो संलाप होता है उससे निर्वेद का आस्वाद होता है।

भास की रसाभिव्यक्ति में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शब्दावली स्वाभाविक और सरल है। उसमें आडम्बर और कृत्रिमता नहीं है। विप्रलम्भ शृङ्गार का यह उदाहरण देखिये—

"कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्ध वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः॥ ४/१॥

वासवदत्ता के अभाव में उसकी वीणा की जो दुर्दशा हुई उसे देखकर राजा का हृदय वासवदत्ता के अभावजनित विप्रलम्भ से ही अभिभूत हो रहा है—

श्रुतिसुखनिनदे कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम्। ६/१॥

वासवदत्ता के वियोग में उदयन की भाव-शबलता का यह चित्र देखिये—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो,
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यस्तथैव मयि स्वता,
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम्॥६/८॥

अलङ्कार

स्वप्नवासवदत्तम् की भाषा प्रसादगुण युक्त है। भास ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो उस समय की प्रायः बोल-चाल की ही भाषा प्रतीत होती है। भास अलङ्कारों के प्रयोग में नहीं उलझे हैं। फिर भी भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में जैसे नीचे के श्लोक में वृत्यनुप्रास का अच्छा प्रयोग अपने आप हो गया है—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः।
पादन्यासविषण्णां वयमिव कान्तावियुक्ताः स्यु ॥४/३॥

वैसे ही भास के स्वाभाविक अर्थनिबन्धन में उपमा, व्यतिकर, स्वभावोक्ति, परिसंख्या और अर्थान्तरन्यास अलङ्कार अपने आप जहाँ-तहाँ आ गये हैं। उपमा का प्रयोग नाटक में कई स्थानों पर आया है। एक उदाहरण देखिये—

कालक्रमेण जगत परिवर्तमाना,
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।

उपमा की भाँति ही स्वभावोक्ति भी कई बार नाटक में आया है। एक उदाहरण से भास के स्वभावोक्ति की मञ्जुलता का परिचय मिल जाता है—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद रविरपि च संक्षिप्तकिरणो,
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ (१/१६)

तपोवन का यह सायन्तन वर्णन आडम्बर विहीन होकर भी बहुत ललित है। विशेषतः छन्द का दूसरा तथा तीसरा चरण काञ्चुकीय से जैसे साधारण पात्र का प्रकृत संवाद प्रतीत होता है।

व्यतिरेक का भी उदाहरण देखिये---

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥४/४॥

यहाँ वासवदत्ता को पद्मावती से अधिक सिद्ध करने के लिये उसके मनोहर रूप विशेष गुण की चर्चा कितने सरल लहजे में कर दी गयी है।

नाटक में आये छन्दों के लक्षण

(१) अनुष्टुप्—

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरू विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥

अनुष्टुप् मे आठ अक्षर होते हैं। उनमें से सभी चरणों में पञ्चम अक्षर लघु होता है। द्वितीय और चतुर्थ में सातवाँ अक्षर लघु होता है और छठा अक्षर सर्वत्र गुरु होता है।

(२) आर्या—

यस्या पादे प्रथमे द्वादश: मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

जिसके पहले और तीसरे पाद में बारह, दूसरे पाद में अठारह और चौथे पाद में पन्द्रह मात्रायें हों उसे आर्या कहते हैं ।

(३) इन्द्रवज्रा—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौग: ।

इन्द्रवज्रा में दो यगण एक जगण और दो गुरु अक्षर होते हैं । कुल ११ वर्ण होते हैं ।

(४) उपजाति—

अनन्तरो दीरित लक्ष्मभाजौपादौ यदीयावुपजातस्या: । उपजाति छन्द इन्द्र-वज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के मिश्रण से बनता है । किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा ।

(५) उपेन्द्रवज्रा—

उपेन्द्रवज्रा जयजास्ततो गौ ।

इसमें भी ११ वर्ण होते हैं । एक जगण, एक तगण, एक जगण और दो गुरु अक्षर ।

(६) पुष्पिताग्रा—

अयुजि नयुगरेफतो पुकारो,
युजि च न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में बारह वर्ण होते हैं । एक नगण एक रगण, एक यगण । द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं । एक नगण, दो जगण, एक रगण और एक गुरु वर्ण ।

(७) वसन्ततिलका—

उक्ता वसन्ततिलकातभजा जगौग: ।

वसन्ततिलका छन्द में १४ वर्ण होते हैं । एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो गुरु वर्ण ।

(८) वैश्वदेवी—

वैश्व देवी छन्द में १२ वर्ण होते हैं । दो मगण, दो यगण । इसमें ५ और ७ पर विराम होता है ।

(९) शार्दूलविक्रीडित—

सूर्याश्वैर्मसजास्तता: सगुरु: शालर्दूलविक्रीडितम् !

इसमें १६ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ सगण, १ जगण, २ तगण और १ गुरु वर्ण। इसमें १२ और ७ पर विराम होता है।

(१०) शालिनी—

मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेद लोकैः।

शालिनी छन्द में ११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण और २ गुरु वर्ण। ३ और ७ पर विराम होता है।

(११) रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागशिखरिणी—

शिखरिणी छन्द में १७ वर्ण होते हैं। एक यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण, एक भगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण। ६ और ११ पर विराम होता है।

(१२) हरिणी—

नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता। हरिणी छन्द में १८ वर्ण होते हैं। १ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण। इसमें ६, ४ और ७ पर विराम होता है।

अन्त में, "स्वप्नवासवदत्तम्" की इस परम उपयोगी टीका के मेधावी लेखक साहित्याकाश के नवोदित नक्षत्र तथा हमारे सुयोग्य शिष्य प्रोफेसर गणेशदत्त शर्मा एम० ए० साहित्याचार्य को हमारा शुभाशीष है। साथ ही इस पुस्तक के प्रकाशक एवं "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयं" के पवित्र पाथेय को लेकर कर्त्तव्य मार्ग में प्रवृत्त होने वाले श्री रतिराम शास्त्री को भी बधाई। इसके अतिरिक्त श्री विजयपाल शास्त्री एम० ए० अध्यापक म० वि० ज्वालापुर तथा श्री यज्ञमित्रसेन ने जो सहयोग दिया है तदर्थ उन्हें भी धन्यवाद। प्राचीम टीकाकारों में श्री पं० तारिणीश झा और श्री कान्तानाथ शास्त्री आदि के प्रति भी हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हमें यह पूर्ण आशा है कि यह टीका छात्रवृन्द के लिये हितकारी सिद्ध होगी।

स्वप्नवासवदत्तस्य टीकेयं सर्वमङ्गला।
पाठकानां वटूनां च कुर्यात् सम्पूर्णमङ्गलम्॥

पुरुषोत्तममासः
सोमवती
आमावस्या

विद्वदाश्रवः—
डॉ० हरिदत्तशास्त्री
उपकुलपतिः—
ज्वालापुरीय गुरुकुल महाविद्यालय
सहारण्यपुरम्

पात्र-परिचय

पात्रों का परिचय (जो रङ्गमञ्च पर आते हैं)

पुरुष पात्र

सूत्रधार—	नाटक का प्रारम्भकर्ता, रङ्गमञ्च का अध्यक्ष ।
भटौ—	पद्मावती के दो सेवक ।
यौगन्धरायणः—	राजा का प्रधानमन्त्री ।
काञ्चुकीयः—	महाराज दर्शक के अन्तःपुर में रहने वाला सेवक ।
	महाराज प्रद्योत का रैभ्य नामक भृत्य ।
ब्रह्मचारी—	लावाणक ग्राम में अध्ययन करने वाला एक विद्यार्थी ।
राजा—	वत्स देश का राजा उदयन ।
विदूषक—	उदयन का नाम वसन्तक ।

स्त्री पात्र

वासवदत्ता—	राजा की पटरानी, प्रद्योत की कन्या, अवन्तिका ।
पद्मावती—	मगधेश्वर दर्शक की बहन, उदयन की दूसरी पत्नी ।
तापसी—	तपोवन में रहने वाली एक वृद्धा स्त्री ।
चेटी—	पद्मावती की विश्वासपात्र परिचारिका ।
मधुरिका, पद्मिनिका	पद्मावती की दो सेविकायें ।
धात्री—	पद्मावती की उपमाता ।
विजया—	उदयन की परिचारिका, प्रतिहारी ।
महादेवी—	पद्मावती की माता ।
अवन्तिसुन्दरी—	एक यक्षी ।
अङ्गारवती—	प्रद्योत की राजमहिषी ।
कुब्जरिका—	पद्मावती की सेविका ।
विरचिका—	उदयन की एक प्रेमिका ।

महाकविभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

ॐ

स्वप्नवासवदत्तम्

प्रथमोऽङ्कः

(नाद्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

उदयेनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥१॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ, आसवदत्ताबलौ, पद्मावतीर्णपूर्णौ, वसन्तकम्रौ बलस्य भुजौ त्वां पाताम् ।

संस्कृत-व्याख्या

उदये—उदयकाले, यः नवः—नूतनः, इन्दुः—चन्द्रः; तेन सवर्णौ—सदृशौ उदयकालिकचन्द्रसदृशकान्तिमन्तौ, आसवदत्ताबलौ दत्तः—अर्पितः; आसवः—मद्यम् यस्यै सा आसवदत्ता एवंभूता अबला रेवती नाम्नी बलरामप्रिया याभ्यां तौ तथाविधौ, अथवा आसवेन दत्तम् उत्पादितम् आसमन्तात् बलं ययोस्तौ विक्रमशीलौ, पद्मावतीर्ण पूर्णौ—पद्मां लक्ष्मीं शोभां वा अवतीर्णौ—प्राप्तौ तथाविधौ च पूर्णौ—सामुद्रिक-शास्त्रोक्तशुभलक्षणसमन्वितौ अथवा पद्मस्य कमलस्य अवतीर्ण अवतारः, भावे क्तः, तेन पूर्णौ परिपूर्णौ कमलरूपेण समुपस्थितौ-कमलवत् कमनीयौ, सर्वदा शोभापरीतौ इत्यर्थः, वसन्तकम्रौवसन्तः—मधुमासः तद्वत् कम्रौ—मनोहारौ, बलस्य-बलरामस्य, भुजौ—बाहू, (भुजबाहू प्रवेष्टोदोःरित्यमरः) त्वाम्—सामाजिकवर्गम्, दर्शकगणम् इत्यर्थः, पाताम्—रक्षताम् । अत्र महाकविना उदयन—वासवदत्ता पद्मावती वसन्त-कानां प्रमुखपात्राणां सूचना समीचीनतया-समुपन्यस्ता अतएवात्र मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं चोक्तमाचार्यैः—'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः' इति । अत्र—आर्यावृत्तम् । तल्लक्षणमभिहितं छन्दश्शास्त्रविशारदैः—

'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥"

इति सप्त गणा गीयेता ॥१॥ इत्यादि च ।

स्वप्नवासवदत्तम्

प्रथम अङ्क

(नान्दी-पाठ के बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है।)

सूत्रधार—उदय होते हुए नवीन चन्द्रमा के सदृश रंगावली, अपनी प्रिया (रेवती) को मदिरा देने वाली (अथवा मदिरा पान से विशेष बलशाली), श्री एवं उत्तम लक्षणों से युक्त तथा वसन्त काल के सदृश कमनीय बलराम की भुजायें आप (दर्शक वृन्द) की रक्षा करें ॥१॥

भद्र पुरुषों से मेरा यह निवेदन है कि······अरे मेरे निवेदन प्रारम्भ करते ही यह शब्द कहाँ से सुनाई पड़ रहा है ? मैं देखता हूँ।

विशेष

पद्य—१ (क) महान् कवि भास वस्तुतः एक सरल कलाकार हैं। उक्त पद्य में भास ने—"मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथमन्ते" आचार्यों की इस परम्परा का निर्वाह किया है। साथ ही महान् कवि ने—"सूचयेद्वस्तुबीजं वा मुखं पात्रमथापि वा" नाटयशास्त्र की इस परम्परा के अनुसार यहाँ नाटक के मुख्य पात्रों का भी नामनिर्देश किया है।

(ख) प्रस्तुत श्लोक में सर्वप्रथम "उदयन" शब्द को उपन्यस्त किया गया है। उदयन इस नाटक का नायक है। साथ ही "उदय" शब्द उन्नति, वृद्धि एवं मंगल का प्रतीक है। वासवदत्ता प्रस्तुत नाटक की नायिका है। पद्मावती का भी नाटक में अपना एक विशेष स्थान है और वसन्तक इस नाटक का विदूषक है।

(ग) यहाँ उक्त चारों पात्रों के नामों की सार्थकता चरितार्थ हो रही है। चारों विशेषणों में इन सभी पात्रों का चरित्र भी झलक उठता है। उदयन वस्तुतः उदय कालीन चन्द्र की भाँति नमस्कार्य है वह चन्द्र की भाँति सुन्दर है तथा उज्ज्वल यश से सम्पन्न है। वासवदत्ता मादकता भरे सौन्दर्य की प्रतिमा है। पद्मावती भी कमल जैसी कमनीय शोभा एवं शुभ लक्षणों को लिये हुये है, इसी भाँति वसन्तक (विदूषक) भी वसन्त की भाँति रहस्यमयी मधुर चेष्टाओं से मुग्ध बना देता है।

(घ) अलंकार—इस पद्य में मुद्रालंकार है क्योंकि यहाँ नाटक के मुख्य पात्रों की सूचना दी गई है मुद्रालङ्कार की परिभाषा—

"सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः"

छन्द—इस श्लोक में आर्या छन्द है। आर्या छन्द की परिभाषा

जिसमें चार-चार मात्राओं के सात गण और एक गुरु हो, विषय गणों में जगण न हो छठा जगण अवश्य हों तथा उत्तरार्द्ध में छठा गण एक मात्रा वाला ही हो।

(नेपथ्ये)

उत्सरत उत्सरत आर्या ! उत्सरत । [उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

'भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥२॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(प्रविश्य)

भटौ—उत्सरत उत्सरत आर्याः ! उत्सरत । [उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह]

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण अवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च)

यौगन्धरायणः—[कर्णं दत्त्वा] कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

अन्वयः—मगधराजस्य कन्यानुगामिभिः, स्निग्धैः, भृत्यैः सर्वः तपोवनगतः जनः धृष्टं उत्सार्यते ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या

मगधराजस्य—मगधदेशाधीश्वरस्य, कन्यायाः—कुमार्याः पद्मावत्याः, अनुगामिनस्तैः—पद्मावतीपरिचारिकैरित्यर्थः स्निग्धैः—स्नेहपूर्णैः, भृत्यैः—सेवकैः—भटैर्वा, सर्वः—सकलः + बालवृद्धादिः, तपोवनगतः—आश्रमस्थः, जनः—तापसलोकः, धृष्टम्—धृष्टतापूर्वकम् उद्धतं यथा स्यात् तथा (क्रियाविशेषणम्), उत्सार्यते—दूरीक्रियते मार्गमध्यादपसार्यत इत्यर्थः ॥२॥

अन्वयः—धीरस्य, आश्रमसंश्रितस्य, वसतः बल्कलवतः, वन्यैः फलैः तुष्टस्य, मानार्हस्य, जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते । भो ! उत्सिक्तः विनयादपेतपुरुषः चलैः भाग्यैः विस्मितः अयं कः इदं निभृतं तपोवनं आज्ञया ग्रामी करोति ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

धीरस्य—स्थिरचित्तस्य, आश्रमे—तपोवने संश्रितस्य—सम्यक आश्रितस्य, वसतः—निवासं कुर्वतः, वल्कलमस्यास्तीति वल्कलवान् तस्य वल्कलवतः वृक्षत्वग्धारिणः वन्यैः-वने भवैः, फलैः, तुष्टस्य—संतोषं प्राप्तस्य, मानार्हस्य—मानः सत्कारः प्रतिष्ठा, इत्यर्थः—तदर्हस्य तद्योग्यस्य आदरणीयस्येति यावत्, जनस्य—तापसलोकस्य, (अपि) त्रासः—समुत्सारणासमुत्थं भयं, कष्टमित्यर्थः, समुत्पाद्यते—जन्यते (उद्भाव्यते) । भो—इति अनादरसूचकसम्बोधनम्, उत्सिक्तः—उदण्डः, विनयात—

(नेपथ्य में)

हटो हटो महानुभावों ! हटो

सूत्रधार— अच्छा समझ गया—मगधराज की कन्या (पद्मावती) के पीछे चलने वाले उनके स्नेही सेवक तपोवन में निवास करने वाले समस्त व्यक्तियों को अशिष्टतापूर्वक हटा रहे हैं ॥२॥

(चला जाता है)

प्रस्तावना समाप्त

(प्रवेश करके)

दो राज पुरुष—हटो ! हटो ! सज्जनो ! हटो।

(उसके पश्चात् संन्यासी वेषधारी यौगन्धरायण और अवन्ति देश की नारी के वेष को धारण किये हुए वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(कान लगाकर) क्या यहाँ भी लोगों को हटाया जा रहा है ? क्योंकि—

धीर, आश्रमनिवासी, छाल के वस्त्र पहनने वाले, वन के फलों से सन्तुष्ट, सम्मान तथा पूजा के योग्य तपस्वीजनों को भी भयभीत किया जा रहा है। अरे ! उद्दण्ड, एवं अविनीत सेवकों वाला तथा नाशवान धन आदि पर घमण्ड करने वाला, यह कौन राजा है जो अपनी आज्ञा से इस शान्त तपोवन को भी गाँव (अशान्त) बना रहा है ॥३॥

नम्रतायाः, अपेता—अपगता भ्रष्टाः पुरुषा भृत्यरूपा यस्य स विनयादपेतपुरुषः—अविनीतसेवकवर्गः, चलैः चञ्चलैः, विनाशशीलैः, भाग्यैः—भागधेयैः, सम्पदाभिरित्यर्थः, विस्मितः—विशेषेण स्मितः विस्मितः—अतिगर्वितः, अयम्, कः—एष कः (प्रभुरस्ति) यः इदं दृश्यमानम्, निभृतम्,—शान्तम्, तपोवनम्—आश्रमस्थानम्, आज्ञया—आदेशेन, ग्रामीकरोति—अग्रामं ग्रामं करोतिः—अभूत तद्भावे च्विः। अग्राममपि ग्रामरूपतां नयति, अशान्तिपरीतं विदधाति इत्यर्थः ॥५॥

विशेष

पद्य २—(क) मगधराजपुत्री पद्मावती तपोवन में निवास करने वाली अपनी माता महादेवी के दर्शन करने आ रही है। उसके पीछे आने वाला सेवकवर्ग सभी तपोवनवासियों को उद्दण्डतापूर्वक मार्ग के मध्य से हटा रहा है। सेवकवर्ग—राजकुमारी का प्रिय है। एवं कृपापात्र है। अतः उसके द्वारा दर्पित होकर धृष्टता प्रदर्शित करना स्वाभाविक है।

(ख) छन्द—इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् छन्द की परिभाषा—

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयो।
षष्ठं गुरुविजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥

स्थापना—महान् कवि भास के प्रायः सभी नाटकों में 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है। केवल 'बालचरित' एवं 'कर्णभार' ही इसके अपवाद हैं। भासोत्तर कालीन नाट्यकृतियों में 'प्रस्तावना' तथा आमुख शब्दों के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। 'स्थापना' शब्द का प्रयोग कालिदासादि की अपेक्षा भास की प्राचीनता को द्योतित करता है।

वासवदत्ता—आर्य ! क एष उत्सारयति ? [अय्यं ! को एसो उस्सारेदि ?]

यौगन्धरायणः—भवति ? यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति । [अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उस्सारइदव्वा होमि त्ति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ? एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ताः—आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः । [अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभवो ।]

यौगन्धरायणः—भुक्तोज्झित एव विषयोऽत्रभवत्या । नात्र चिन्ता कार्या। कुतः—

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी—
चच्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।

विशेष

पद्य ३—(क) प्रस्तुत पद्य में महाकवि ने तपोवन एवं तपस्वियों का यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण किया है । तपस्वी लोग धीर अर्थात् स्थिरचित्त होते हैं। महान् कवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में धीर शब्द की परिभाषा सुरम्य रूप में की है—

"विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।" अर्थात् जो लोग विकारों के साधन होते हुए भी विकृत नहीं होते वही धीर हैं । उपनिषदों में धीर का अभिप्राय तत्त्वज्ञानी है । 'कठोपनिषद्' में कहा है—श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस् —तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः" । यहाँ धीर का अभिप्राय 'तत्त्वज्ञानी' से है ।

(ख) **वन्यैः फलैः तुष्टस्य**—तपस्वीजन का यह विशेषण अत्यन्त सार्थक है। यहाँ पर निम्न उक्ति चरितार्थ हो रही है—

"कन्दैर्फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालम् ।
संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ।।"

वस्तुत संतोष ही सबसे बड़ा धन है और यही परम सुख है ।

(ग) **चलैः भाग्यैः**—यहाँ महाकवि ने सांसारिक ऐश्वर्य की विनश्वरता सूचित की है । मनीषियों ने लक्ष्मी को 'चला' कहा है । धन को क्षणभंगुर माना है "अर्थापादं रजोपमा" । अतः चलैः विशेषण अत्यन्त सार्थक है ।

वासवदत्ता—आर्य, यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायण—देवि ! जो अपने को धर्म से हटा रहा है।

वासवदत्ता—आर्य ! मैं यहाँ नहीं कहना चाहती। क्या मुझे भी हटाया जायेगा।

यौगन्धरायण--आर्ये ! इस प्रकार से परिचित न होने पर तो देवता भी अपमानित हो जाते हैं।

वासवदत्ता--आर्य ! थकावट मुझे उतना पीड़ित नहीं करती जितना कि वह अपमान।

यौगन्धरायण--आपने तो पहले ही इस समाधान का उपभोग करके आज कार्यवश छोड़ दिया है। अतः इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि--

"पहले आप भी इसी भाँति इच्छानुसार (राजकीय ठाट-बाट के साथ) चला करती थीं और फिर अपने पति (उदयन) की विजय होने पर उसी भाँति

(घ) विनयादपेतपुरुषः—शान्त तपोवन में अविनय का व्यवहार अनुचित है महान् कवि कालिदास ने भी कहा है—"विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम"। अतः राजपुरुषों का उक्त व्यवहार अनुचित है।

(ङ) अलङ्कार—प्रस्तुत पद्य में सभी विशेषण साभिप्राय हैं। अतः यहाँ परिकर अलङ्कार है। 'परिकर अलंकार' की परिभाषा आचार्य मम्मट ने निम्न प्रकार से की है—

"विशेषणैर्यत्साकूतै रुक्तिः परिकरस्तु सः।"

छन्द—यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है—

सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

कालक्रमेण जगतः, परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥४॥

भटौ—उत्सरत आर्या ! उत्सरत । [उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

परिहरतु भवान् नृपापवादं,
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते,
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥५॥

अन्वयः—पूर्वं त्वया अपि एवम् अभिमतं गतम् आसीत् । पुनः भर्तुः विजयेन (एवमेव) श्लाघ्यं गमिष्यसि । (यतो हि) कालक्रमेण परिवर्तमाना जगतः भाग्यपंक्तिः चक्रारपंक्तिरिव गच्छति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

पूर्वम्—पूर्वकाले, नगरनिवाससमये इत्यर्थः । त्वयापि—भवत्यापि । एवम्—ईदृशम् अभिमतम्—अभीष्टम् इच्छानुरूपमित्यर्थः (क्रियाविशेषणमिदम्), गतमासीत्—प्रस्थितमासीत् । पुनः—भूयः, भर्तुः—स्वामिनः, उदयनस्य, विजयेन—राज्यप्राप्तिलक्षणेन जयेन श्लाघ्यम्—परिजनैः प्रशंसनीयं यथा स्यात्तथा (क्रियाविशेषणम्)—गमिष्यसि—यास्यसि । यतोहि कालक्रमेण—समयानुसारेण, परिवर्तमाना—विभिन्नरूपतां गच्छन्ती, जगतः—लोकस्य, भाग्यपंक्तिः—अदृष्टपरम्परा, चक्रस्य—रथाङ्गस्य, अराणाम्—नाभिनेम्यन्तगलस्थित—काष्ठविशेषाणाम्, पंक्तिरिव श्रेणिरिव, गच्छति—व्रजति । यथा रथचक्रगतानि अराणि क्रमेण उपरि अधश्च गच्छन्ति तथैव मानवानां शुभानि अशुभानि च भागधेयानि समयगत्यनुसारं विपरिवर्तन्ते । अतएव समयमहिमोद्भवं क्लेशमनुभवन्त्यापि समयगतिं प्रतीक्षमाणया त्वया मनसि खेदो न विधेयः ॥४॥

अन्वयः—भवान् नृपापवादं परिहरतु, आश्रमवासिसु परुषं (वाक्यम्) न प्रयोज्यम् । (यतोहि) एते मनस्विनः नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनमभिगम्य वसन्ति ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या

भवान्—त्वं सम्भषकः, नृपापवादं—नृपस्य—राज्ञो दर्शकस्य, अपवादं—निन्दां, कलङ्कं वा, परिहरतु—दूरी करोतु । आश्रमवासिषु—तपोवननिवासिषु भवता परुषं—रूक्षम्, "उत्सरत, उत्सरत" इत्येवंविधं कठोरवचनम्, न प्रयोज्यम्—न व्याहर्तव्यम् । यतोहि एते—आश्रमस्थाः; मनस्विनः—प्रशस्तमानसास्तपस्विनः, नगरपरिभवान्—नगरे सम्भावितानपमानान्, विमोक्तुं,—परिहर्तुं, वनं—अरण्यम्, अभिगम्य—आगत्य, वसन्ति—निवासं कुर्वन्ति । अयं भावः—एते—शान्तचित्तास्तापसाः नगरे सम्भाव्यमानानपमानान् निराकर्तुं तपोवनमधिवसन्ति । अत्रापि चेदेतादृशी तिरस्क्रिया लभ्या, तर्हि तैः क्व गन्तव्यम् । अतोनो सार्याः कदर्थनीया वा तपस्विनः क्रूरवाचा ॥५॥

सेवकों से प्रशंसित होकर चला करेगी । क्योंकि समय के फेर से बदलने वाली भाग्य-दशा रथ के पहियों के अरों की भाँति ऊपर-नीचे होती रहती है ।।४।।

दोनों राजपुरुष—हटो सज्जनो हटो ।

(तदुपरान्त कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—सम्भषक ! मत हटाओ, मत हटाओ देखो—

तुम राज की निन्दा को दूर करो । तुम्हें आश्रमवासियों से कठोर वचन नहीं कहने चाहिए । क्योंकि ये स्वाभिमानी तपस्वी लोग शहरों में होने वाले तिरस्कारों से बचने के लिये वन में आकर रह रहे हैं ।।५।।

विशेष

पद्य ४—(क) प्रस्तुत पद्य में महान् कवि ने विश्व की परिवर्तनशीलता की मधुर अभिव्यञ्जना की है । वस्तुतः समय बहुत बलवान् है । महान् कवि माघ ने कहा है—

"समय एव करोति बलाबलम्"

यही समय आकाश के तारों को धराशायी कर देता है और धरती के धूलि कणों को आकाश में टांग देता है । समय ने ही आज महारानी वासवदत्ता को भी इस रूप में ला दिया है ।

(ख) चक्रारपंक्तिरिव—मनुष्यों की भाग्यदशा में पहिये के अरों की भाँति उत्थान-पतन होता हैं । महान् कवि भास की यह अत्यन्त गौरवमयी सूक्ति है । मेघदूत की निम्न उक्ति में भी इसी की छाया दृष्टिगोचर होती है—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" ।

महान् कवियों की इस प्रकार की उक्तियाँ दैवदलित मानवों को बहुत ही सन्तोष एवं शान्ति प्रदान करती हैं ।

(ग) अलङ्कार—यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण "अर्थान्तिरन्यास" अलङ्कार है ।

छन्द—इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है । लक्षण—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।"

विशेष

पद्य ५—(क) भास ने इस पद्य से तपोवन वासियों की मानमर्यादा का सुन्दर दिग्दर्शन किया है । तपस्वीजन मनस्वी होते है । अतः वह सदैव पूजनीय हैं और पूजनीय जनों का तिरस्कार अनिष्टकारक है । कहा भी है—

अनुबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।।

(ख) इस श्लोक में काव्यलिङ्गः अलङ्कार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है । पुष्पिताग्रा का लक्षण—

अयुजि नयुगरेफतो यकारो—
युजि च नजो ज़रगाश्च पुष्पिताग्रा ।।

उभौ—आर्य ! तथा । [अय्य ! तह]

(निष्क्रान्तौ)

यौगन्धरायणः—हन्त सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—आर्य । तथा । [अय्य ! तह]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य ।) भोः किं कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः । तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥६॥

यौगन्धरायणः (स्वगतम्) एवम् । एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः—

अन्वयः—तपोधनानि तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् वनात् स्वैरम् उपनयन्तु । हि धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडां न इच्छेत्—एतत् अस्याः कुलव्रतम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

तपोधनानि—तपश्चर्यासाधनानि, तपःसाधनीभूतान् पदार्थानित्यर्थः,—कानि तानि साधनानीत्याह—तीर्थोदकानि—तीर्थस्य—पवित्रस्य नद्योदेर्जलाशयस्य, उदकानि जलानि, समिधः—यज्ञीयकाष्ठानि, कुसुमानि—पुष्पाणि, दर्भान्—कुशान्, स्वैरं—यथेच्छं वनात्—अरण्यात्, उपनयन्तु—आनयन्तु । हि—यस्मात्, धर्मप्रिया—धर्मः प्रियो यस्या सा धर्मप्रिया—धर्मानुरागिणी, नृपसुता—राजपुत्री पद्मावती, तपस्विषु—तपोधनेषु धर्मपीडां—धर्माचरणबाधाम्, न इच्छेत्—न वांच्छेत् । एतत्—तपोविघ्नस्पृहाराहित्यम्—अस्याः—पद्मावत्याः, कुलव्रतम्—वंशपरम्परागतं व्रतम् अस्तिती शेषः ॥६॥

दोनों—आर्य ! अच्छा (वैसा ही होगा)

(दोनों चले जाते हैं)

यौगन्धरायण—अहा ! इसकी बुद्धि तो विज्ञान (विवेक) से पूर्ण है । बेटी ! हम लोग इसके पास चलें ।

वासवदत्ता—आर्य ! अच्छा । (ऐसा ही करें) ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) अजी ! यह हटाया किस लिए जा रहा है ?

कञ्चुकी—हे तपस्वी !

यौगन्धरायण—(मन में) "तपस्विन्"—यह सम्बोधन मेरे लिए आदर प्रकट करता है, परन्तु इसका अभ्यास न होने से मुझे यह अच्छा नहीं लगा ।

कञ्चुकी—भगवन् ! सुनिये । ये हमारे उन महाराज दर्शक की बहिन पद्मावती हैं, जिसका नाम गुरुओं ने रखा है । ये आश्रम में निवास करने वाली हमारे महाराज की माता महादेवी से मिलकर और उनसे आज्ञा लेकर फिर राजगृह (राजधानी) को ही लौट जायेंगी इसीलिये आज इस आश्रम में ही उनका निवास अपेक्षित है । अतएव आप लोग—

तपस्या के साधन—तीर्थ-जल, समिधायें, पुष्प तथा कुशा आदि अपनी इच्छानुसार जंगल से ले आवें । क्योंकि धर्म में अनुराग रखने वाली यह राजकुमारी तपस्वियों के धर्माचरण में बाधा नहीं डालना चाहती । यह इनका वंश परम्परागत व्रत है ।

यौगन्धरायण—(मन में) अच्छा ? यह वही मगधराज की कन्या पद्मावती है जो पुष्पकभद्रादि ज्योतिषियों के कथनानुसार महाराज उदयन की रानी होगी ! इसी कारण—

विशेष

पद्य—६ (क) महान् कवि भास के तत्कालीन राजाओं के चरित्र की एक झाँकी प्रस्तुत की है । राज-परिवार के लोग भी उस समय आश्रम मर्यादा का सतर्कता से पालन किया करते थे । वह सांसारिक सुखों को लात मारकर वृद्धावस्था में आश्रम में जाकर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत किया करते थे ।

(ख) इस पद्य में पद्मावती के लिये धर्मप्रिया विशेषण उसकी धर्मप्रियता को द्योतित करता है । तपस्वियों के कार्य में विघ्न डालना उस समय पाप समझा जाता था । समाज में तपस्वियों को सम्मान प्राप्त था ।

(ग) इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥६॥

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥७॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते। [राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ संपज्जइ]

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च)

चेटी—एत्वेसु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु। [एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्स पदं पविसदु]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी)

तापसी— स्वागतं राजदारिकायाः। [साअदं राअदारिआए।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्)। इयं सा राजदारिका। अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्। [इअं सा राअदारिआ। अभिजणाणुरूवं खु से रूवं।]

पद्मावती—आर्ये! वन्दे। [अय्ये। वन्दामि।]

तापसी—चिरं जीव। प्रविश जाते! प्रविश। तपोवनानि नामाऽतिथिजनस्स स्वगेहकम्। [चिरं जीव। पविस जादे! पविस तपोवणाणि णाम अदिहिजणस्स सअगेहं।]

पद्मावती—भवतु भवतु। आर्ये! विश्वस्ताऽस्मि। अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीताऽस्मि। [भोदु भोदु। अय्ये विस्सत्थह्मि। इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा। [ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा।]

तापसी—भद्रे। इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति! [भद्दे इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअ कोवि राजा ण वरेदि?]

अन्वयः—प्रद्वेषः वा बहुमानः सङ्कल्पात् (एव) उपजायते। भर्तृदाराभिलाषित्वात् अस्यां मे महती स्वता (अस्ति) ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या

प्रद्वेषः—वैरातिशयः, वा—अथवा, बहुमानः—अत्यादरः, सङ्कल्पात्—मानसात् कर्मण एव, उपजायते—उद्भवति। ("सङ्कल्पः कर्ममानसम्" इत्यमरः)। भर्तृदाराभिलाषित्वात्—भर्तुः—स्वामिनः उदयनस्य दाराः—भार्या इति भर्तृदाराः तान् अभिलषतीति भर्तृदाराभिलाषी, तस्य भावः भर्तृदाराभिलाषित्वम् तस्मात्—"स्वामिनो भार्येयं भूयात्"—इति स्पृहाशीलत्वादित्यर्थः 'दार' शब्द केवलं पुंसि बहुवचने एव प्रयुज्यते। "अथ पुम्भूम्निदाराः" इत्यमरः। अतएव। मे मम यौगन्धरायणस्य। अस्यां—पद्मावत्यां महती गुर्वी, स्वता-स्वस्य भावः स्वता आत्मीयता अस्ति।

अयं भावः यस्य चित्ते यादृशी भावना उत्पद्यते यद्विषये, स तदनुसारेणैव तं स्निह्यति प्रद्वेष्टि वा। अतएव पूर्वं "अनुचितोत्सारणाज्ञा प्रवर्तिकेयम्"—इति सङ्कल्पात् पद्मावत्यां मम विद्वेषः आसीत्—इदानीं तु इयम् उदयनस्य राजमहिषी भूयात्"—इति सङ्कल्पात् अस्यां मे महती आत्मीयता—वृद्धिरुत्पद्यते ॥७॥

वैर या आदर मन के भाव से ही उत्पन्न होते हैं। इसीलिये स्वामी की पत्नी बनाने की इच्छा के कारण इस पद्मावती में मुझे बड़ी आत्मीयता हो रही है।

वासवदत्ता—(मन में) राजा की कन्या यह सुनकर मुझे इस पर बहिन का सा स्नेह भी होता है।

(तत्पश्चात् सहेलियों और चेटी सहित पद्मावती का प्रवेश)

चेटी—आइये राजकुमार जी ? आइये। इस आश्रम में प्रवेश कीजिये।

(तदनन्तर बैठी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी—राजकुमारी का स्वागत है।

वासवदत्ता—(मन में) यही वह राजकुमारी है। इसका रूप भी कुल के समान ही कमनीय है।

पद्मावती—आर्यें मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

तापसी—चिरञ्जीव होवो। आओ बेटी आओ। तपोवन तो अतिथियों का अपना घर है।

पद्मावती—अच्छा, अच्छा। आर्यें ? मैं निश्चिन्त हूँ। आपके इस आदर-सूचक वचन से अनुगृहीत हूँ।

वासवदत्ता—(मन में) केवल रूप ही नहीं, इसकी वाणी भी मधुर है।

तापसी—कल्याणि ! क्या कोई राजा महाराजा दर्शक की इस बहिन (पद्मावती) का वरण नहीं करता ?

विशेष

पद्य ७—(क) प्रस्तुत पद्य में महान् कवि भास ने एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया है। वस्तुतः यह भावनाओं का संसार है। भावना के अनुसार ही व्यक्ति किसी वस्तु को आदर या घृणा की दृष्टि से देखता है। पहले मुनियों के हटाने के कारण यौगन्धरायण के मन में पद्मावती के प्रति अच्छे भाव नहीं थे परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वह उदयन की होने वाली पत्नी है तो उसमें पद्मावती के प्रति आत्मीयता जाग उठती है। यहाँ संकल्प की महिमा का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। मनु ने कहा है—"संकल्पमूलः कामो वै......"।

(ख) इस पद्य में अर्थान्तरन्यास एवं काव्यलिङ्ग अलङ्कार है तथा अनुष्टुप् छन्द है।

चेटी—अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः । स दारकस्य कारणात् दूतसम्पातं करोति । [अत्थि राआ पज्जोदोणाम उज्जणीए । सो दारअस्स कारणादो दूदसंपादं करेदि ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भवतु भवतु । एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता । [भोदु भोदु । एसा अ अन्तणीआ दाणिं संवृत्ता ।]

तापसी—अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य उभे । राजकुले महत्तरे इति श्रूयते । [अर्हा खु इअं आददी इमस्स बहुमाणस्स । उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि ।]

पद्मावती—आर्ये ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् ? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां यावत् कः किमिच्छतीति । [अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं ? अभिप्पेदप्पदाणेन तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति ।]

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या । भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः । शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः । इहात्र भवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेण उत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
　　दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
　　यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

अन्वय—कस्य कलशेन अर्थः ? कः वासः मृगयते ? यथानिश्चितं दीक्षां पारितवान् पुनः (कः) किमिच्छति; यत् गुरोः देयं भवेत् । धर्माभिरामप्रिया नृपजा आत्मानुग्रहमिच्छति । (अतः) यस्य यत् समीप्सितं अस्ति तद् वदतु, अद्य कस्य किं दीयताम् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

कस्य—तपस्विजनस्य, कलशेन कमण्डल्वादिना जलपात्रेण अर्थः प्रयोजनं विद्यते ? कः कलशाभिलाषीत्यर्थः । कः वासः-वस्त्रं मृगयते–अन्विषति, वाञ्छतीत्यर्थः । यथानिश्चितं—यथा संकल्पितम्, दीक्षां—ब्रह्मचर्यपूर्वकमध्यनव्रतम्, पारितवान्—समापितवान्, पुनः भूयः-

(कः) किं—वस्तु इच्छति–वाञ्छति, यत—वस्तु, गुरोः—आचार्यस्य, देयं—दातव्यम् भवेत्—स्यात् । धर्माभिरामप्रिया—धर्म–अभिरामः –अभिरुचिः येषां ते धर्माभिरामाः—धर्मानुरागिणः, ते प्रियाः यस्याः सा, नृपजा—राजकन्या इह—अस्मिन् आश्रमे, आत्मानुग्रहम्—स्वस्य कृतार्थताम्, इच्छति—अभिलषित । यस्य—तपस्विनः, यत्—वस्तु —समीप्सितम्—अभीष्टम्—अस्ति स तद्—वस्तु, वदतु—कथयतु । अद्य अस्मिन् दिवसे कस्य तपस्विनः, किं—वस्तु दीयताम्—समार्प्यताम् ? अर्थात्—भवन्तः स्वाभिलषितं निःशङ्कं प्रकाशयन्तु । मगधराजकुमारी पद्मावती भवदर्थश्रवणादेवानुगृहीतामात्मानं मंस्यते ॥८॥

दासी—उज्जयिनी के प्रद्योत नामक राजा हैं। उन्होंने (अपने) पुत्र के लिये दूत भेजा है।

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा-अच्छा। यह तो इस समय आत्मीय हो गयी।

तापसी—निश्चय ही यह आकृति इस सम्मान के योग्य है। ऐसा सुना जाता है कि दोनों ही राजकुल अति महान् हैं।

पद्मावती—आर्य ! क्या आपने किसी ऐसे ऋषि मुनि को देखा है, जो (कुछ प्राप्त कर) मुझ पर अनुकम्पा कर सके ? आप अभीष्ट वस्तु प्रदान करने की घोषणा करते हुये तपस्विजनों से प्रार्थनापूर्वक पूछें कि कौन क्या चाहते हैं ?

कञ्चुकी—जैसी आपकी इच्छा। हे आश्रमवासी मुनीवृन्द ! आप जरा ध्यान देकर सुनिए। यहाँ पूजनीय मगध राज पुत्री पद्मावती आपके स्वागत से विश्वस्त (सन्तुष्ट) होकर धर्माचरण की कामना से आप लोगों को दान लेने के लिये निमन्त्रित कर रही है।

"किसे कमण्डलु की आवश्यकता है। कौन वस्त्र खोज रहा है ? और विधिवत् शिक्षा समाप्ति कर लेने वाला, गुरु जी को दक्षिणा रूप में कौन क्या देना चाहता है ? धार्मिक जनों से प्रेम करने वाली राजकुमारी इस तपोवन में अपने ऊपर आपका अनुग्रह चाहती है। इसलिए जिसको जो अभीष्ट हो वह बताए कि आज जिसको क्या दिया जाये।"

विशेष

पद्य ८—(क) इस पद्य में पद्मावती की दानशीलता का सुरम्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। पद्मावती चाहती है कि तपस्विजन निःशंक होकर अपनी आवश्यकताओं को उनके सामने रखें। वह जो चाहें सो माँगे। पद्मावती तपस्वियों को यथेच्छ दान देकर ही अपने को कृतार्थ समझती है।

(ख) पद्मावती ने कञ्चुकी द्वारा दान की उक्त घोषणा करायी है। यहाँ आश्रमवासियों की आवश्यकताओं का स्वाभाविक निर्देश है। आश्रमवासी जल आदि रखने के लिये कमण्डलु का प्रयोग करते हैं। उन्हें वस्त्रों की भी आवश्यकता होती है। आश्रम में ब्रह्मचारी वेदाध्ययन किया करते हैं और वेदाध्ययन के पश्चात् दीक्षान्त होने पर उन्हें अपने गुरु के लिए गुरु दक्षिणा भी देनी होती है। इस भाँति स्वाभाविक रूप से आश्रमवासियों की ये आवश्यकतायें हैं। पद्मावती उक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कृतसंकल्प है।

(ग) महान कवि भास ने यहाँ कञ्चुकी द्वारा गुरु दक्षिणा का निर्देश किया है। यह भारत की एक परमपुनीत परम्परा थी। विद्यार्थी आश्रमों में रहकर गुरु के चरणों में शिक्षा प्राप्त किया करते थे। शिक्षा की समाप्ति के बाद शिष्य अपनी श्रद्धा एव सामर्थ्य के अनुसार गुरु दक्षिणा देते थे। महर्षि मनु ने कहा है—"स्नास्यंस्तु—गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्"। यदि शिष्य के पास कुछ भी नहीं होता था तो वह कम से कम एक नारियल या यज्ञोपवीत का जोड़ा तो गुरु को अवश्य ही समर्पित कर देता था। परन्तु इस परम्परा का निर्वाह हर हालत में था। महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु विरजानन्द को गुरु दक्षिणा में लौंग ही समर्पित की थीं ॥८॥

यौगन्धरायणः—हन्त ? दृष्ट उपायः। (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी।

पद्मावती—दिष्टया सफलं मे तपोवनाभिगमनम्। [दिट्ठिआ सहलं मे तपोवनाभिगमणम्।]

तापसी—सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् आगन्तुकेनानेन भवितव्यम्। [संतुट्ठतवस्सिजणं इदं अस्समपदं। आअन्तुएण इमिणा होदव्वं।]

काञ्चुकीयः—भोः ? किं क्रियताम् ?

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् कुतः—

> कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै-
> र्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
> धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा-
> शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥६॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ? भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति। [हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगन्धरायणो ! होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि।]

काञ्चुकीयः—भवति ? महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

अन्वयः—(मम) न एव अर्थैः, न अपि भोगैः, न (च) वस्त्रैः कार्यम् (अस्ति)। न अहं वृत्तिहेतोः काषायं प्रपन्नः। इयं कन्या धीरा दृष्टधर्मप्रचारा (अस्ति)। (अतः) मे भगिन्याः चारित्रं रक्षितुं समर्था (अस्ति) ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

मम=यौगन्धरायणस्य, न एव=न हि एव, अर्थैः=धनैः, न अपि भोगैः=कलशादिभिर्भोग्यपदार्थैः, न च वस्त्रैः=वसनैः, परिधानयोग्यैः कार्यम्=प्रयोजनमस्ति। न अहं वृत्तिहेतोः= जीविकार्थम्, काषायम्=काषायेण, अक्तं वस्त्रं काषायम् गैरिकरक्तं वस्त्रं, हरिव्राजकवेषमित्यर्थः, प्रपन्नः=अङ्गीकृतवान्। इयं पुरोदृश्यमाना, कन्या=मगधराजपुत्री, धीरा=पण्डिता, "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः" इत्यमरः, दृष्टधर्मप्रचारा दृष्टः=अवलोकितः, धर्मप्रचारः=धर्माचरणं यस्याः ता तादृशी धर्माचरणशीला अस्ति। अतः मे—मम—भगिन्या=स्वसुः, चारित्रम्=चरित्रं सतीत्वमित्यर्थः' रक्षितुं=गोपायितुं शक्ता=समर्था वरीवर्ति। यतः कारणादियं विदुषी—धर्मप्रिया च पद्मावती मद्भगिन्याचरितं रक्षितुं समर्था, तत एव कारणादहमत्रभवत्याः सन्निधौ निक्षेप्तुमेतामिच्छामीति स्पष्टोऽर्थः ॥६॥

यौगन्धरायण—अहा ! एक उपाय सूझ गया । (प्रकट रूप में) श्रीमन् ? मैं प्रार्थी हूँ ।

पद्मावती—सौभाग्य से मेरा तपोवन में आना सफल हुआ ।

तापसी—इस आश्रम के तो सभी तपस्वीजन सन्तुष्ट हैं । यह कोई बाहर से आया होगा ।

कञ्चुकी—भगवन् ? बताइए क्या किया जाय ?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहिन है । इसके पति परदेश गये हैं । अतः मैं कुछ समय के लिये इसे पूजनीया राजकुमारी के संरक्षण में रखना चाहता हूँ । क्योंकि—

"न तो मुझे धन-सम्पत्ति से, न सांसारिक सुखों से और न ही वस्त्रों से कोई प्रयोजन है । न मैंने आजीविका के लिये गेरुआ वस्त्र (परिव्राजक वेष) धारण किया है । किन्तु मगधराज की कन्या विदुषी तथा धर्मप्रिया हैं । वह मेरी बहिन के चरित्र की रक्षा कर सकती हैं । इसीलिए मेरी यह प्रार्थना है ॥६॥

वासवदत्ता—(मन में) ऐ–आर्य यौगन्धरायण मुझे पद्मावती को सौंपना चाहते हैं । अच्छा, ये बिना सोचे कोई कार्य नहीं करेंगे ।

कञ्चुकी—माननीये ? इस संन्यासी की आश्रय-प्रार्थना अत्यन्त कठिन है । हम कैसे स्वीकार करें । क्योंकि—

विशेष

पद्य ६—(क) यौगन्धरायण की इस उक्ति में एक गरिमा के दर्शन होते हैं । उसे धन की आवश्यकता नहीं और न ही उसे सांसारिक सुख भोगों की लालसा है । यौगन्धरायण ने आजीविका के लिये तपस्वी वेष धारण नहीं किया है,—अपितु इसके पीछे उसका एक महान् उद्देश्य निहित है । उदयन के खोये राज्य की पुनः प्राप्ति यौगन्धरायण का प्रमुख लक्ष्य है । वह इसीलिये संन्यासी बना है और इसी लिए उसने वासवदत्ता को राजा से अलग किया है । अतः सांसारिक वैभव उसके महान् उद्देश्य में बाधक नहीं बन सकते । उसने तो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये राज्य के सुख को लात मार कर परिव्राजक वेष स्वीकार किया है ।

(ख) यौगन्धरायण अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रूप रखना चाहता है । वह जानता है कि पद्मावती स्वयं विदुषी एवं सच्चरित्रशील है, अतः वह उसकी बहिन के चरित्र की रक्षा कर सकती है । यह स्वाभाविक है कि जो स्वयं चरित्रवान् एवं धर्मपरायण है वही दूसरे के चरित्र एवं धर्म की रक्षा कर सकता है ।

(ग) इस श्लोक में पद्मावती की न्यासरक्षण क्षमता का समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । साथ ही यह पद्य वैश्वदेवी छन्द का सुरम्य उदाहरण है, जिसका लक्षण निम्न प्रकार से किया जाता है—

"पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ"—॥६॥

सुखमर्थो भवेत् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥१०॥

पद्मावती—आर्य ! प्रथममद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति तनुतिष्ठत्वार्यः । [अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदिति अजुत्तं दाणिं विआरिदं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो ।]

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी—चिरं जीवतु भर्तृदानिकैवं सत्यवादिनी [चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवाणी]

तापसी—चिरं जीवतु भद्रे ! [चिरं जीवदु भद्दे !]

काञ्चुकीयः—भवति ? तथा (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्रभवतीम् ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गतिः । एषा गच्छामि मन्दभागा । [का गई । एसा गच्छामि मन्दभाआ ।]

पद्मावती—भवतु भवतु । आत्मीयेदानीं सवृत्ता । [भोदु भोदु । अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता ।]

तापसी—या ईदृश्यस्या आकृतिः इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि । [जा ईदिमी से आइदी, इयं वि राअदरि अत्ति तक्केमि]

चेटी—सुष्ठु आर्या भणति । अहमपि अनुभूतसुखेति प्रेक्षे । सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ? अर्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि । तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । कुतः—

अन्वयः—अर्थः दातुं सुख भवेत्, प्राणाः (दातुं) सुखम्, तपः (दातुं) सुखम्, अन्यत् सर्वं सुखं भवेत् (किन्तु) न्यासस्य रक्षणं दुःखम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या

अर्थः—धनम्, दातुं= वितरितुम्, सुख—सुखकरं अनायासं यथा स्यात्तथा, भवेत्-स्यात्, प्राणाः-असवः दातुं-समर्पयितुं सुखं आयासरहितं-भवेयुरितिवचनविपरिणामेनानुवर्तनीयम् । एवमेव तप-तपश्चरणम्, तपः फलमिति यावत्, तपः शब्देन तत्फलं लक्ष्यते, दातुं सुखं भवेत् । अन्यत्—इतरत्, सर्वं-सकलं-वस्तुजातं सुखं अक्लेशेनैव दातुं भवेत्, किन्तु न्यासस्य-निक्षेपस्य, रक्षणं—पालनम् तु दुखं—दुष्करम् । अयमाशयः—धनप्राणादीनां समस्तानां वस्तूनां वितरणं तावल्लोके सुकरं परं निक्षेपरक्षणं नामस्वस्मिन्नुत्तरदायित्वेन सर्वथादुष्करम् । अत एव यौगन्धरायणस्य अभिलाषपूरणमशक्यम् ॥१०॥

'धन देना सरल है ? प्राण, तपस्या का फल तथा और सब कुछ देना सरल है, परन्तु न्यास (धरोहर) की रक्षा करना कठिन है।"

पद्मावती—आर्य पहले "कौन क्या चाहता है"—ऐसी घोषणा करके अब उस विषय में सोच विचार करना ठीक नहीं। जो ये कहते हैं, आप उसे कीजिये।

कञ्चुकी—यह आपने अपने कुल-शील आदि के योग्य ही कहा।

दासी—इस तरह सत्य बोलने वाली राजकुमारी चिरकाल तक जिएँ।

तापसी—कल्याणि ? आप दीर्घायु हों।

कञ्चुकी—कल्याणि ? ठीक है। (पास जाकर)—भगवन् ? पूजनीया राजकुमारी ने आपकी बहिन का पालन करना स्वीकार कर लिया है।

यौगन्धरायण—पूजनीया राजकुमारी ने मुझे अनुगृहीत किया है। वत्से ? इनके पास जाओ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) क्या करूँ। मैं अभागिन अब जाती हूँ।

पद्मावती—अच्छा, अच्छा, अब यह आत्मीय हो गई।

तापसी—यह जो इसकी ऐसी आकृति है, तो मैं सोचती हूँ कि यह भी राजकुमारी है।

दासी—आर्या ठीक कहती हैं। मैं भी समझती हूँ कि यह राजसुख का अनुभव किये हुए है।

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहा। आधा भार तो कम हुआ। जैसा मन्त्रियों के साथ निश्चय किया है,—वैसा ही हो रहा है। क्रमशः स्वामी (महाराज उदयन) के राजसिंहासन पर अधिष्ठित हो जाने पर वासवदत्ता को उनके पास ले जाते समय मगध राजकुमारी पद्मावती ही इस विषय में (वासवदत्ता की चरित्र शुद्धि के बारे में) साक्षिणी होंगी। क्योंकि—

विशेष

पद्य १०—(क)—कञ्चुकी की इस उक्ति में एक वास्तविकता का उद्घाटन हुआ है। उत्तरदायित्व विश्व में सबसे बड़ी वस्तु है। और फिर धरोहर की रक्षा का उत्तरदायित्व तो और भी महत्त्वपूर्ण है। उसका निर्वाह सरल नहीं है।

(ख) सच है,—दानी व्यक्ति धन का दान आसानी से कर देते हैं—सन्त पुरुष परोपकार के लिये अपने प्राणों एवं तपस्या के फल तक को भी अनायास न्योछावर कर देते हैं। अभिप्राय यह है कि अन्य सभी कार्य सरल हैं—परन्तु न्यास-धरोहर) की रक्षा अत्यन्त कठिन है। साथ ही यौगन्धरायण की—न्यास तो और भी विचित्र है। यह एक लड़की है, और असाधारण रूप में सुन्दरी है। इसके चरित्र का भी पता नहीं। कहीं ऐसा न हो कि उल्टे परेशानी में फंस जाएँ। अतः यौगन्धरायण की उक्त अभिलाषा पूर्ण करना अत्यन्त कठिन है।

(ग) इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥१०॥

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः दृढमस्मि परिश्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम्, अभितस्तपोवनेन भवितव्यम् । तथाहि—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।

अन्वयः—यैः प्रथमं विपत्तिः दृष्टा (तैः) अथ पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री प्रदिष्टा । तत्प्रत्ययात् इदं कृतम् । हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि उत्क्रम्य न गच्छति ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

यैः—पुष्पकभद्रादिभिः सिद्धैः, प्रथमं—पूर्वम् विपत्तिः—उदयनराज्यापहरणरूपा विषद्, दृष्टा—अवलोकिता, सूचितेत्यर्थः, तैरेव सिद्धपुरुषैः अथ—अनन्तरम्, पद्मावती मगधराजपुत्री, नरपतेः—उदयनस्य, महिषी—कृताभिषेका- पत्नी,—"कृताभिषेका महिषी"—इत्यमरः, भवित्री—भवानी, प्रदिष्टा—कथितासंसूचितेति यावत् । प्रत्ययात् –तत्र-सिद्धादेशे प्रत्ययात्—विश्वासात्, इदं—पद्मावत्या समीपे वासवदत्ताया न्यासरूपेण स्थापनम्,-कृतं-विहितम् । हि – यतः, विधिः—दैवम्, सुपरीक्षितानि—सत्यत्वपरीक्षयां सम्यक् समुत्तीर्णानि—सिद्धवाक्यानि – सिद्धपुरुषाणां वचनानि, उत्क्रम्य—उल्लंघ्य, न गच्छति—व्रजति । अर्थात्—भाविनोऽर्थाः सिद्धवचनानुसारमेव परिणमन्ति ॥११॥

अन्वयः—(अत्र) देशागतप्रत्ययाः हरिणाः अचकिताः (सन्तः) विस्रब्धं चरन्ति दयारक्षिताः सर्वेवृक्षा पुष्पफलैः समृद्धविटपा (सन्ति)। कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम् (सन्ति)। दिशः अक्षेत्रवत्यः (सन्ति)। अयं वह्निश्रयः धूमः (प्रसरन्ति)। (अतः) निःसन्दिग्धं इदं तपोवनं (अस्ति) ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

अत्र पुरोदृश्यमाने अस्मिन् स्थले देशागतप्रत्यया—देशे—प्रदेशे-तपोवने, आगतः—प्राप्तः, प्रत्ययः—विश्वासः येषां ते तथाविध, हरिणाः—मृगाः, अचकिताः—निर्भयाः सन्तः, विस्रब्धम्—निश्शंक यथा स्यात् तथा (क्रियाविशेषणमिदम्), चरन्ति—विचरणं कुर्वन्ति । दयारक्षिताः—दःया—अनुकम्पया, प्रेम्णा, रक्षिताः—पालिताः, सर्वे वृक्षाः—पादपाः, पुष्पैश्च फलैश्च पुष्पफलैः समृद्धविटपाः—समृद्धाय—परिपूर्णा; विटपाः—शाखा येषां ते तथाविधाः सन्ति । दिशः—ककुभः, प्रान्तभागा इति यावत्, अक्षेत्रवत्यः—क्षेत्राणि—केदाराः विद्यन्ते अत्र इति क्षेत्रवत्यः न क्षेत्रवत्यः

"जिन पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों ने उदयन की राज्यहानि रूप विपत्ति को पहले ही सूचित किया था, उन्होंने ही बाद में यह भविष्यवाणी की—"पद्मावती राजा उदयन की पटरानी होगी'। उन्हीं के वचनों पर विश्वास करके मैंने यह (वासवदत्ता को पद्मावती के हाथ सौंपना) किया है। क्योंकि भवितव्यता भली प्रकार परखे हुए सिद्धों के वचनों का उल्लंघन करके नहीं चलती।

(उसके बाद ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—(ऊपर को देखकर) दोपहर हो गया। मैं बहुत थक गया हूँ। अब किस स्थान पर विश्राम करूँ? (घूमकर) अच्छा देख लिया। मालूम होता है। कि यहाँ पास में ही तपोवन है। क्योंकि—

'यहाँ आश्रमस्थल के कारण विश्वस्त हिरन भयरहित होकर निश्शंक घूम रहे हैं। दया एवं प्रेम-पूर्वक पाले हुए सभी वृक्षों की डालियाँ फूलों एवं फलों से लदी

विशेष

पद्य ११—(क) यौगन्धरायण की इस उक्ति में एक सार्वभौम सत्य के दर्शन होते हैं। सिद्धों की वाणी का भाग्य भी अतिक्रमण नहीं करता। भवितव्यता उनकी वाणी के पीछे दौड़ती है। महान् कवि भवभूति ने भी कहा है–लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावती"। अर्थात् लौकिक पुरुषों की वाणी अर्थों (सिद्धिओं) का अनुगमन करती है परन्तु सिद्ध पुरुषों की वाणी के पीछे समस्त सिद्धियाँ दौड़ती हैं।

(ख) इस पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार तथा "वसन्ततिलका" छन्द है ॥११॥

पद्य—१२ (क) महान् कवि भास ने यहाँ तपोवन का एक स्वाभाविक एवं मनोहर चित्र खींचा है। ब्रह्मचारी की इस उक्ति में एक सौन्दर्य है। आश्रमस्थल अत्यन्त पवित्र होते हैं। वहाँ चारों ओर अहिंसा का वातावरण होता है तपस्वी लोग भी अहिंसा के पुजारी होते हैं। अतः वहाँ हिंसक से हिंसक प्राणी भी हिंसा त्याग कर निवास करते हैं। फलतः वहाँ हिरन आदि कोमल जन्तु भी निर्भय होकर विचरण करते हैं। योगदर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"—अर्थात् जब व्यक्ति की आत्मा में, उसके रोम-रोम में अहिंसा की स्थापना हो जाती है तो उसके समीप आकर हिंसक से हिंसक जन्तु भी वैर त्याग देता है।

(ख) आश्रमवासी तपस्विजन अपने पुत्रों के समान प्रेम से वृक्षों का पालन-पोषण करते हैं—अतः वृक्ष भी सदा ही पुष्प फलों की समृद्धि से सम्पन्न रहते हैं। आश्रमवासियों का सबसे बड़ा धन गोधन ही है। पहले आश्रमों में बहुत बड़ी संख्या में गौएँ रहा करती थीं। आश्रमवासी उसकी सेवा करते थे और इसलिये वहाँ दूध घी आदि की प्रचुरता रहती थी। आश्रम के आस-पास की भूमियों में भी कृषि इस

भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥१२॥

ब्रह्मचारी—यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये ! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः । (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र । निर्दोषमुपसर्पणम् । अये ! स्त्रीजनः ।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हम् !

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः । [अम्भो ! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या ! भोदु, सुपरिवालणीओ खु मण्णासो ।]

काञ्चुकीयः—भोः ! पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

ब्रह्मचारी—(आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः, कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

ब्रह्मचारी—भोः ? श्रूयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा लावाणकं णाम । लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः । [हा लावाणअं णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णीवकिदो विल मे सन्दावो ।]

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् !

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता विद्या, किमगमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

अक्षेत्रवत्यः, कृषियोग्यक्षेत्रवर्जिताः सन्ति । इति भावः । बह्वाश्रयः—बहूनि होमद्रव्याणि आश्रयः आधारो यस्य स बह्वाश्रयः—हवनीयद्रव्यशाली, अयं पुरोवर्ती धूमः यज्ञीयधूमः, परितः प्रसरति । अतएव इदं पुरो दृश्यमानं स्थल, निःसंदिग्धं—निश्चितम्, तपोवनम्—तापसाश्रमः अस्तीत्यनुमीयते ॥१२॥

हुई हैं। हाँ कपिला (कैरी) गौवों के समूह भी प्रचुरमात्रा में घूम रहे हैं। आस-पास की चारों दिशाओं की भूमि में खेती नहीं हो रही है और अनेक होम-द्रव्यों की सुगन्धि को लिए हुए धुआँ चारों ओर फैल रहा है अतः निस्संदेह यह तपोवन है ॥१२॥

ब्रह्मचारी—तो अन्दर चलूँ (प्रवेश करके) अरे ! यह व्यक्ति तो आश्रम के विरुद्ध मालूम होता है। (दूसरी ओर देखकर) अथवा यहाँ तपस्वी लोग भी हैं। पास जाने में कोई दोष नहीं है। स्त्रियाँ (भी हैं)।

कञ्चुकी—आप बेधड़क आइए। आश्रम तो सर्वसाधारण होता है।

वासवदत्ता—एँ !

पद्मावती—ओहो ! आर्या वासवदत्ता परपुरुष का दर्शन नहीं चाहती। अच्छा, मेरी धरोहर की रक्षा सावधानी से होनी चाहिये।

कञ्चुकी—श्रीमन् ! हम लोग पहले से ही आये हुए हैं अतः आप हमारा अतिथि सत्कार स्वीकार करें।

ब्रह्मचारी—[आचमन करके] अच्छा, अच्छा (बस रहने दो)। अब मेरी थकावट दूर हो गई।

यौगन्धरायण—श्रीमन् ! आप कहाँ से आ रहे हैं, कहाँ जाना है और आपका निवास-स्थान कहाँ है ?

ब्रह्मचारी—भगवन् ! सुनिये। मैं राजगृह से आया हूँ। वत्सराज उदयन के राज्य में एक लावाणक नामक गाँव है। मैंने वहाँ वेद के विशेष अध्ययन के लिये कुछ काल तक निवास किया।

वासवदत्ता—[मन ही मन] हाय ! लावाणक ! लावाणक नाम लेने से मेरा सन्ताप फिर नया सा हो गया है।

यौगन्धरायण—क्या आपका विद्याध्ययन समाप्त हो गया ?

ब्रह्मचारी—अभी नहीं।

यौगन्धरायण—यदि विद्या पूर्ण नहीं हुई तो यहाँ क्यों चले आये ?

ब्रह्मचारी—वहाँ बड़ी भयानक विपत्ति आ पड़ी है।

यौगन्धरायण—कैसी ?

लिये नहीं होती थी कि वहाँ आश्रम की गौएँ चरने जाती थीं वह भूमि चरागाह के लिये सुरक्षित होती थी।

(ग) आश्रमों में सबको धार्मिक क्रियाएँ प्रतिदिन सम्यक् करनी होती हैं। आश्रमवासी यज्ञ किया करते हैं—और उनके यज्ञ के धुयें की सुगन्ध से दिग्दिगन्त सुरभित हो उठते हैं।

(घ) इस श्लोक में तपोवन का स्वाभाविक चित्रण होने से "स्वाभाविक" अलंकार है। यहाँ 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है ॥१२॥

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अलीकम् अलीकम् खलु एतत् । जीवामि मन्दभागा । [अलीअं अलीअं खु एदं जीवामि मन्दभाआ ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्युपपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः ?

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् । [जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः ।

सर्वे—हा ?

वासवदत्ता—[स्वगतम्] सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु । [सकामो दाणिं अय्यजोअन्धराअणो होदु ।]

चेटी—भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या । [भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इअं अय्या ।]

पद्मावती—सानुक्रोशया भवितव्यम् [साणुक्कोसाए होदव्वं ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—दिष्ट्या ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् । [दिट्ठिआ धरइ । मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामक राजा रहते थे।

यौगन्धरायण—पूजनीय महाराज उदयन का नाम सुना है ? उनका क्या हाल है ?

ब्रह्मचारी—उनकी अवन्ति राजपुत्री वासवदत्ता नाम की पत्नी उन्हें अत्यन्त प्रिय थी ?

यौगन्धरायण—होगी। फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब [एक दिन] राजा के शिकार खेलने के लिए चले जाने पर गाँव में आग लगने से वह जल गई।

वासवदत्ता—[मन ही मन] झूठ है, यह बिल्कुल झूठ है। मैं अभागिन जीवित हूँ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब उसको बचाने के लिये मन्त्री यौगन्धरायण भी उसी अग्नि में कूद पड़ा।

यौगन्धरायण—क्या सचमुच गिर पड़ा ? फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—उसके बाद शिकार से लौटने पर राजा ने जब यह समाचार सुना तो वह उन दोनों के वियोग से उत्पन्न दुःख के कारण उसी आग में कूदकर प्राण देने को तैयार हो गया और मंत्रियों ने बड़े प्रयत्न से उसे रोका।

वासवदत्ता—[मन ही मन] जानती हूँ, जानती हूँ, आर्यपुत्र की मुझ पर रहने वाली कृपा को अच्छी तरह से जानती हूँ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—उसके बाद वासवदत्ता के पहने हुए तथा जलने से बचे हुए आभूषणों को छाती से लगाकर राजा मूर्च्छित हो गये।

सभी—हाय ?

वासवदत्ता—[मन ही मन] अब आर्य यौगन्धरायण का मनोरथ पूर्ण हो।

दासी—राजकुमारि ! ये महाशय (अवन्तिका) तो रो रही हैं।

पद्मावती—यह दयालु होंगी।

यौगन्धरायण—और क्या, और क्या। मेरी बहन स्वभाव से दयालु है। फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—उसके बाद धीरे-धीरे राजा होश में आया।

पद्मावती—सौभाग्य से वह (उदयन) जीवित है। "वह मूर्च्छित हो गए"—ऐसा सुनकर तो मेरा हृदय सूना सा हो गया।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी–ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ? इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका,
नैवाप्यन्ते स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता,
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥१३॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम् । स हि—

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।

अन्वयः—इदानीं तादृशाः चक्रवाकाः नैव (सन्ति) । स्त्रीविशेषैः वियुक्ताः वन्येऽपि तादृशा नैव (सन्ति) सा स्त्री धन्या यां भर्ता तथा वेत्ति । हि सा दग्धापि भर्तृस्नेहात् अदग्धा (वर्तते) ।

संस्कृत-व्याख्या

इदानीम्—अस्मिन् समये, तादृशाः—उदयनसदृशाः, चक्रवाका—तन्नाम पक्षिविशेषाः नैव—न नूनं सन्ति । स्त्रीविशेषैः—सीताशकुन्तलादमयन्तीत्यादिभिः प्रसिद्धाभिधियोद्भिः, वियुक्ताः—विरहिताः, अन्येऽपि—इतरेऽपि, रामदुष्यन्तनैषध प्रभृतयोऽपि, तादृशाः—उदयनसदृशाः विरहव्यथिता नैव—न सन्तीति निश्चयः, अर्थात् वासवदत्तावियुक्तोदयनविरहवेदनाविलक्षणैवास्ति । सा स्त्री—योषित्, धन्या—धनं लब्धा,—सौभाग्यशालिनीति भावः, यां स्त्रियं भर्ता—पतिः, तथा—उदयनमिव, असाधारणास्नेहभाजनमिति भावः, जानाति—मन्यते । अतएव हि—निश्चयेन, सा—वासवदत्ता, दग्धापि—भस्मीकृतापि, भर्तृस्नेहात्—पतिप्रणयात्, अदग्धा—न दग्धा अदग्धा—सुरक्षिता—जीवन्ती वर्तत इत्यर्थः । पत्युरतिशय प्रणयभाजनं भामिनी नूनं कृतकृत्येति प्रियप्रणयसर्वस्वभूता विशिष्टस्त्रीषु गणनीया सेयं वासवदत्ता अग्नौ पाञ्चभौतिकं शरीरं त्यक्त्वापि प्रियेण प्रदत्तं प्रेमरूपं शरीरान्तरं—विभृती साम्प्रतं जीवत्येवेति भावः ।

अन्वयः—(स हि) अनाहारे तुल्यः, प्रततरुदितक्षामवदनः नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः—नरपति परिचरति । यदि नृपः सद्यः प्राणान् त्यजति (तर्हि) तस्यापि उपरमः (एव) ॥१४॥

ब्रह्मचारी---उसके बाद पृथ्वी पर लोटने से उनका शरीर धूलि-धूसरित हो गया और उन्होंने सहसा उठकर कहा---वासवदत्ता ! हाय अवन्ति-राजपुत्रि ! हाय प्यारी ? हाय मेरी प्यारी शिष्ये ! इत्यादि रूप में बहुत विलाप किया। अधिक क्या कहा जाये—

'इस समय चक्रवों की भी वैसी दशा नहीं है, और न ही उनके समान कोई अन्य स्त्री वियोगी है। वह स्त्री धन्य है जिसे पति उस भाँति (अत्युन्त प्रिय) मानता है। वस्तुतः वह जल जाने पर पतिस्नेह के कारण जली नहीं है अर्थात् जीवित जाग्रत है ॥१३॥

यौगन्धरायण—अरे भाई ! क्या किसी मन्त्री ने उन्हें सामान्य अवस्था (प्रकृति) में लाने का यत्न नहीं किया ?

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नामक मन्त्री महाराजा को होश में लाने के लिए बहुत यत्न कर रहा है। वह तो—

'राजा की ही भाँति भोजन छोड़े हुए है और निरन्तर रोने से राजा के ही सदृश उसका मुख भी मलिन हुआ रहता है। राजा के समान दुःख का अनुभव करता हुआ वह भी शरीर-शुद्धि के लिये स्नानादि आवश्यक क्रियायें जैसे तैसे कष्ट-

---

विशेष

पद्य १३---(क) महान् कवि भास ने प्रस्तुत पद्य में दाम्पत्य प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया है। वासवदत्ता के वियोग में उदयन की विरह-वेदना की जो अभिव्यञ्जना यहां हुई है वह वस्तुतः अपने में एक विशेषता है। साथ ही—'धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता'—यह सूक्ति भी एक गरिमा को लिये हुए है।

(ख) भर्तृस्नेहात्—पति का स्नेह पत्नी के लिये सबसे बड़ा सौभाग्य है। पतिस्नेह पत्नी के शरीरत्याग के बाद उसे जीवित रखता है। अतः अग्नि में जलकर मर जाने पर भी वासवदत्ता अपने पति उदयन के प्रणय के कारण जीवित है। स्नेह शब्द तेल का भी वाचक है और तेज दाह शामक है।

(ग) अलङ्कार—यहाँ चक्रवाक आदि प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय रूप में वर्णित किया गया है अतः यहाँ प्रतीप अलङ्कार है। लक्षण—

'प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्'' ।

छन्द—यहाँ शालिनी छन्द है। जिसका लक्षण है—

'शलिन्धुक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' ॥

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

वासवदत्ता—[स्वगतम्] दिष्टया सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः । [दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो ।]

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] अहो ? महद्भारमुद्वहति रुमण्वान् । कुतः—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

[प्रकाशम्] अथ भोः ? पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

संस्कृत-व्याख्या

स हि—रुमण्वान्—हि शब्दस्त्वर्थे हेत्वर्थे वा, अनाहारे—आहाराभावे भोजनत्यागे, तुल्यः उदयनसदृशः वासवदत्ता शोकविकलेन राज्ञेव, रुमण्वतापि तच्चिन्तया भोजनं परित्यक्तमित्यर्थः । प्रततरुदितक्षामवदनः—प्रततरुदितेन निरन्तररोदनेन क्षामं क्षीणं निष्प्रभं वदनं मुखं यस्य सः, राज्ञ इव रुमण्वतोऽपि मुखमविरताश्रुपातेन विच्छातयां गतमित्यर्थः । नृपतिसमदुःखं—नृपतिना सम सदृशं दुःखं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम्. शरीरे—दहे, संस्कारम्—मार्जनम्, स्नानादि—जानतां शुद्धिमित्यर्थः, परिवहन्—धारयन्, दिवा वा रात्रौ वा—अहर्निशमित्यर्थः, यत्नैः—प्रयत्नैः, नरपतिम्—राजानम्, परिचरति—सेवते । नृपवदमात्नोऽपि कष्टाधिक्येन कथञ्चिदत्यावश्यकं स्नानादिशरीरसंस्कारमाचरन् दिवानिशं प्रयत्नपूर्वकं दत्तावधानः तस्य सेवां विदधातीति भावः । किमधिकम् यदि नृपः—राजा, दुःसहेन—वासवदत्ता विरहेण सद्यस्तत्कालं, प्राणान्-असून्-त्यजति—मुञ्चति, तर्हि तस्य—रुमण्वतोऽपि उपरमः—मृत्युरेवेति निश्चयः । राजा तस्य प्राणेभ्योऽपि प्रियं वरीवर्तीति भावः साम्प्रतं रुमण्वान् उदयनसमसुख-दुःखावस्थो वरीवर्तीति । सारांशः ॥१४॥

अन्वयः—हि अयं (मदीयः) भारः सविश्रमः, तु तस्य श्रमः प्रसक्तः । हि नराधिपः यत्राधीनः सर्वं तस्मिन् अधीनम् ॥१५॥

हि निश्चयेन, अयं वासवदत्तारक्षणरूपः मदीयः भारः सविश्रमः—विश्रमेण विरामेण सहितः युक्तः संजातः—विरोमोऽभूदिति भावार्थः तु—किन्तु तस्य—रुमण्वता श्रमः भूपतिरक्षणरूपः परिश्रमः, प्रसक्तः—प्रकर्षेण विशेषेण सक्तः लग्नः प्रकृष्टरूपेण समवस्थित इति भावः । वासवदत्तारक्षणरूपः मदीयो भारस्तु न्यूनतामधिगतः, नरपतिरक्षणरूपः रुमण्वतश्च भारो वृद्धिगतः इत्याशयः । हि—यतः नराधिपः राजा यत्राधीनः—यस्मिन्नायत्तः सर्वं सकलं राजकीयं कार्यजातं तस्मिन्नाधीनं भवति । यो मन्त्री राजापरिपालनरूपं महद्भारमुद्वहति, निखिलमपि राजसम्बन्धीकार्यजाततदायत्तमेव भवतीति भावः ॥१५॥

पूर्वक सम्पन्न करता है। दिन हो या रात वह निरन्तर यत्नपूर्वक राजा की सेवा कर रहा है अधिक क्या यदि राजा शीघ्र ही प्राणों का त्याग करें तो उसका भी मरण निश्चित ही है ॥

वासवदत्ता--(मन ही मन) सौभाग्य से इस समय स्वामी की देख रेख अच्छे व्यक्ति के हाथों में है।

यौगन्धरायण—(आप ही आप) ओहो रुमण्वन् बड़ा भार सम्भाले हुये हैं क्योंकि—

"—मेरा यह भार तो कुछ कम हो गया है, किन्तु रुमण्वान् का भार और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि राजा जिसके अधीन होता है राज्य सम्बन्धी सारा कार्यकलाप भी उसी के अधीन रहता है।

(स्पष्ट रूप से)—अरे भाई ? क्या राजा को अब होश आया ?

विशेष

पद्य १४—(क) इस पद्य में मन्त्री रुमण्वान् की राजा के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट हो रही है। राजा मन्त्री के लिये प्राणों से भी बढ़कर है। वस्तुतः राजा के प्रति मन्त्री की यह तन्मयता अपने में एक आदर्श है।

(ख) यहाँ शिखरिणी छन्द है--

"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी"।

पद्य १५—(क) अयं भारः—यह वासवदत्ता की रक्षा का भार। वासवदत्ता की रक्षा का भार यौगन्धरायण के सिर पर था, जो कि वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रूप में सौंप देने से कम हो गया था। यौगन्धरायण की "सविश्रमो ह्ययभारः" इस उक्ति का यही अभिप्राय है।

(ख) नस्यतु श्रमः—रुमण्वान् का परिश्रम या भार। रुमण्वान् ने लावाणक ग्राम में वासवदत्ता के जल जाने की बात सुनकर अत्यन्त शोकविह्वल राजा उदयन की रक्षा का महान् भार अपने ऊपर ले लिया था, जो कि बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

(ग) तस्मिन् सर्वमधीनम्—राजा की रक्षा का असाधारण भार जिस मन्त्री पर होता है—राज्य की सारी क्रियाएँ एवं गतिविधियाँ भी उसी के अधीन रहती हैं--यह एक स्वाभाविक बात है रुमण्वान् रक्षा के महान् उत्तरदायित्व को सम्भाले हुए था अतः राज्य की समस्त क्रियाशीलता भी उसी में केन्द्रित हो गयी थी।

इस पद्य में सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास की छटा है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है ॥१५॥

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने। इह तया सह हसितम् इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्, इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वा क्रान्तम्। ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः। ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि।

तापसी—सा खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते। [सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि]

चेटी—भर्तृदारिके! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति? भट्टिदारिए! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि।]

पद्मावती—[आत्मगतम्] मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्? [मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम्।]

ब्रह्मचारी—आ पृच्छामि भवन्तौ? गच्छामस्तावत्।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये।

ब्रह्मचारी—तथास्तु।

(निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल।

पद्मावती—आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते। [अय्यस्स भइणि आ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि।]

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। [काञ्चुकीयमवलोक्य] गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायणः—तथास्तु।

(निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

पद्मावती—आर्ये। वन्दे। [अय्ये। वन्दामि।]

तापसी—जाते! तव सदृशं भर्तारं लभस्व। [जादे तव सदिसं भत्तारं लभेहि।]

वासवदत्ता—आर्ये! वन्दे तावदहम्। [अय्ये वन्दामिदाव अहं।]

तापसी—त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय। [तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि।]

वासवदत्ता—अनुगृहीतास्मि। [अणुग्गहदह्मि]।

ब्रह्मचारी--अब यह मुझे नहीं मालूम । यहाँ उसके साथ हंसा था, यहाँ उनके साथ वार्तालाप किया था, यहाँ उनके साथ बैठा था, यहाँ उनके साथ कुछ हुआ था, यहाँ उसके साथ सोया था, 'इस प्रकार से विलाप करने वाले उस राजा को मन्त्री लोग बड़े प्रयत्न से उस गाँव से लेकर चले गये । तब राजा के निकल जाने पर चन्द्रमा एवं नक्षत्र विहीन आकाश की भाँति वह गाँव सौन्दर्य से रहित हो गया । इसीलिये मैं भी वहाँ से निकल आया हूँ ।

तापसी--निश्चय ही वह राजा बहुत गुणवान् है जिसकी यह आगन्तुक (ब्रह्मचारी) भी इस भाँति प्रशंसा कर रहा है ।

चेटी--राजकुमारि ! क्या अब दूसरी कोई स्त्री राजा को प्राप्त (हस्तगत) होगी (अर्थात् क्या अब राजा का किसी अन्य स्त्री के साथ विवाह होगा ?) ।

पद्मावती--(मन ही मन) इसने तो मेरे हृदय के साथ (समान) ही सोचा ।

ब्रह्मचारी--आप दोनों की अनुमति चाहता हूँ । अब हम जाते हैं ।

दोनों--अपनी प्रयोजना सिद्धि के लिए जाइए ।

ब्रह्मचारी--वैसा ही हो ।

(चला जाता है)

यौगन्धरायण--अच्छा, मैं भी पूजनीया (पद्मावती) की आज्ञा पाकर जाना चाहता हूँ ।

कञ्चुकी--(पद्मावती से) आपकी अनुमति पाकर ये (यौगन्धरायण) भी जाना चाहते हैं ।

पद्मावती--आर्य के बिना आर्य (यौगन्धरायण) की बहिन व्याकुल होंगी ।

यौगन्धरायण--अच्छे व्यक्ति के संरक्षण में रखी हुई (हाथ में गई हुई) यह (मेरी वहिन) व्याकुल न होगी । (कञ्चुकी को देखकर) अच्छा तो हम जाते हैं ।

कञ्चुकी--जाइए,--फिर दर्शन के लिये अर्थात् आप फिर दर्शन दीजिएगा ।

यौगन्धरायण--वैसा ही हो ।

(चला जाता है)

कञ्चुकी--अब अन्दर चलने का समय है ।

पद्मावती--आर्ये ! वन्दना (प्रणाम) करती हूँ ।

तापसी--बेटी ! तुम अपने समान पति को प्राप्त करो ।

वासवदत्ता--आर्ये ! मैं वन्दना (प्रणाम) करती हूँ ।

तापसी--तुम भी शीघ्र पति को प्राप्त करो ।

वासवदत्ता--मैं अनुगृहीत हूँ ।

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इत इतो भवति । सम्प्रति हि—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो,
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे ।]

प्रथमोऽङ्कः



अन्वयः—खगा वासोपेताः, मुनिजनः सलिलमवगाढः प्रदीप्तः अग्निः भाति धूमः मुनिवनं प्रविचरति, अपि च, असौ दूरात् परिभ्रष्टः रविः संक्षिप्तकिरणः सन्, रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ॥१६॥

संस्कृत व्याख्या

खगाः=विहगाः, वासं=कुलायं, उपेताः=प्राप्ताः सन्ति । मुनिजनः=तापसगणः, सलिलं=जलं, अवगाढः=स्नानार्थं प्रविष्टः इत्यर्थः । अग्निः=यज्ञीयाग्निः, प्रदीप्तः=प्रज्वलितः, सन् भाति=प्रकाशते, धूमः=यज्ञधूमः, मुनिवनं=तपोवनं, प्रविचरति=परितः प्रसरति । अपि च=किं असौ अस्ताचलं गमिष्यन् दूरात्+सुदूरादाकाशात्, परिभ्रष्टः=च्युतः रवि संक्षिप्तकिरणः=संक्षिप्ताः संकुचिताः किरणाः रश्मयः येन सः, संहृतकरः सन्नित्याशयः, रथं=स्यन्दनं, व्यावर्त्य=परिवर्त्य, शनैः=मन्दं मन्दं अस्तशिखरं=अस्तशृङ्ग—प्रविशति=प्रवेशं करोति, स्वकीयं रश्मिजालं संहृत्य सूर्यं अस्ताचलं गच्छतीति भावार्थः ॥१६॥

काञ्चुकी—तो आइए। श्रीमती जी ! इधर उधर। क्योंकि इस समय—

"पक्षी अपने निवास स्थान (घोसलों) पर चले गये, मुनिलोग (स्नान के लिये) जल में प्रविष्ट हो गये, यज्ञीय अग्नि प्रज्वलित होकर चमक रही है, तपोवन में चारों ओर धुँआ फैल रहा है, और सुन्दर आकाश से गिरा हुआ यह सूर्य भी अपनी किरणों को समेटते हुए रथ को लौटाकर धीरे-धीरे अस्ताचल में प्रवेश कर रहा है ॥१६॥

(सब चले जाते हैं)

प्रथम अङ्क समाप्त.



विशेष

(क) महान् कवि भास ने यहाँ भारत के पुरातन तपोवनों की सौर्यसंध्या का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। अतः यहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार है लक्षण--

"स्वभावोक्ति स्वभावस्त जात्यादिस्थ स्य वर्णनम्"

(ख) यहाँ शिखरिणी छन्द है। लक्षण—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागा शिखरिणी" ॥

(ग) जहाँ पर अन्त में सब पात्र निकलते हैं उसे 'अङ्क' कहते हैं। लक्षण—

"अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः।

(साहित्यदर्पण)

प्रथम अङ्क समाप्त



अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि । अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति । यावदुपसर्पस्यामि । कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणसि, एसा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति । जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअं भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचूलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणी अदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्सं ।]

(निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः समाप्तः ।

ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह ।)

वासवदत्ता—हला । एष ते कन्दुकः । [हला ! एसो दे कन्दुओ ।]

पद्मावती—आर्ये ! भवतु इदानीमेतावत् [अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं ।]

वासवदत्ता—हला ! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ [हला अदिचिरं कन्दुएण कीलअ अहिअसञ्जादराआ परकेआ विअ दे हत्था संवुत्ता ।]

चेटी—क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीयः कालः । [कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ । णिव्वत्तिअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो ।]

पद्मावती—आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि,? [अय्ये! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ?]

वासवदत्ता—नहि नहि । हला । अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि । [णहि णहि । हला अधिअं अज्ज सोहदि । अभिदो विअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि ।]

पद्मावती—अपेहि । मेदानीं मामपहस । [अवेहि मा दाणिं मं ओहस ।]

वासवदत्ता—एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु ! [एसह्मि तुह्णिआ भविस्सम्महासेणबहू !]

पद्मावती—क एष महासेनो नाम ? [को एसो महासेणो णाम ?]

द्वितीय अङ्क

(तत्पश्चात् दासी का प्रवेश)

दासी—कुञ्जरिका ? कुञ्जरिका ? राजकुमारी पद्मावती कहाँ है ? कहाँ है ? क्या कह रही हो, वह राजकुमारी माधवीलतामण्डप के समीप गेंद खेल रही हैं। अच्छा, तो राजकुमारी के पास जाती हूँ। (घूमकर और देखकर) ओहो ! वह राजकुमारी जिन्होंने अपने कर्णाभूषणों को ऊपर की ओर उठा रखा है तथा व्यायाम अर्थात् कन्दुकक्रीडा से उत्पन्न पसीने की बूंदों से शोभायुक्त एवं थके हुए होने पर भी जो सुन्दर दिखलाई पड़ रहा है ऐसे मुख वाली पद्मावती गेंद से खेलती हुई इधर ही आ रही हैं तो तब तक मैं भी उनके समीप चलूँ।

(निकल गई)

(प्रवेशक समाप्त)

(इसके अनन्तर गेंद खेलती हुई पद्मावती अपने परिजनों और वासवदत्ता के साथ प्रवेश करती है।)

वासवदत्ता—हे बहन ! यह तुम्हारी गेंद है।

पद्मावती—आर्ये ! इस समय इतना ही बहुत है।

वासवदत्ता—हे बहन ! बहुत देर तक गेंद से खेलने के कारण अधिक लाल तुम्हारे हाथ जैसे दूसरे के हो रहे हों।

दासी—राजकुमारी तब तक और खेल लें। कुँआरेपन का यह रमणीय समय आनन्द के साथ बिता लें।

पद्मावती—आर्ये ! इस समय क्या तुम मेरा उपहास करने के लिए ही मुझे देख रही हो ?

वासवदत्ता—नहीं नहीं। आज (तुम्हारा मुख) अधिक सुन्दर लग रहा है। अब निकट ही तुम्हारे वर का मुख देखती हूँ। अभिप्राय यह है कि निकट भविष्य में ही तुम्हारा विवाहोत्सव सम्पन्न होगा।

पद्मावती—दूर हटो ! अब मेरा उपहास मत करो।

वासवदत्ता—महासेन की होने वाली बहू ! अब मैं चुप हो गई।

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—अस्ति उज्जयिन्यो राजा प्रद्योतो नाम। तस्य बलपरिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति। [अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदो णाम। तस्स परिमाणणिव्वुत्तं णामहेअं महासेणोत्ति।]

चेटी—भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति। [भट्टिदारिआ तेण रञ्जा सह सम्बन्धं णेच्छदि।]

वासवदत्ता—अथ केन खल्विदानीमभिलषति? [अह केण खु दाणिं अभिलसदि?]

चेटी—अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति। [अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम। तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन? [अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि। (प्रकाशम्) केण कारणेण?]

चेटी—सानक्रोश इति। [साणुक्कोसो त्ति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः [जाणामि जाणामि। अअं वि जणो एव्वं उम्मादिदो।]

चेटी—भर्तृदारिके! यदि स राजा विरूपो भवेत्? [भट्टिदारिए! जदि सो राआ विरूवो भवे?]

वासवदत्ता—नहीं नहीं। दर्शनीय एव। [णहि णहि। दंसणीओ एव्व।]

पद्मावती—आर्ये! कथं त्वं जानासि? [अय्ये! कहं तुवं जाणासि?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। किमिदानीं करिष्यामि? भवतु, दृष्टम्। हला! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते। [अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। किं दाणिं करिस्सं? होदु, दिट्ठं। (प्रकाशम्) हला! एव्वं उज्जइणीओ जणो मन्तेदि।]

पद्मावती—युज्यते। खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम। [जुज्जइ। ण कु एसो उज्जइणीदुल्लहो। सव्वजणमणोभिरामं खु सोभाग्गं णाम।]

(ततः प्रविशति धात्री)

धात्री—जयतु भर्तृदारिका। भर्तृदारिके! दत्तासि। [जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए! दिण्णासि।]

वासवदत्ता—आर्ये! कस्मै? [अय्ये! कस्स?]

धात्री—वत्सराजायोदनाय। [वच्छराअस्स उदअणस्स।]

वासवदत्ता—अथ कुशली स राजा? अह [कुसली सो राआ?]

धात्री—कुशली स आगतः। तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च। [कुसली सो आअदो। तस्स भट्टिदारिआ परिच्छिदा अ।]

वासवदत्ता—अत्याहितम्। [अच्चाहिदं।]

धात्री—किमत्रात्याहितम्? [किं एत्थ अच्चाहिदं?]

वासवदत्ता—उज्जयिनी का राजा प्रद्योत नाम वाला है। अत्यन्त विशाल सेना रखने के कारण उसका नाम महासेन पड़ गया।

चेटी—राजकुमारी उस राजा के साथ विवाह करना नहीं चाहती।

वासवदत्ता—तब फिर किसके साथ अपना विवाह करना चाहती हैं।

दासी—वत्सदेश का उदयन नामक राजा है। राजकुमारी उन्हीं के गुणों पर मुग्ध है।

वासवदत्ता—(अपने मन में) आर्यपुत्र को पति के रूप में पाने की इच्छा करती है! (प्रकट में) किस कारण से?

दासी—क्योंकि वह दयावान् है।

वासवदत्ता—(अपने मन में) जानती हूँ, जानती हूँ। इस व्यक्ति को भी इसी प्रकार उन्मत्त बनाया गया था।

दासी—राजकुमारि! यदि वह राजा कुरूप हुआ।

वासवदत्ता—नहीं, नहीं। वे तो सुन्दर हैं।

पद्मावती—आर्ये! तुम्हें किस प्रकार से मालूम है?

वासवदत्ता—(अपने मन में) आर्यपुत्र के पक्षपात से मैं कर्त्तव्य-पालन से विमुख हो गई। इस समय क्या करूं? अच्छा उत्तर सोच लिया। [प्रकट में] ऐसा उज्जयिनी-निवासी कहते हैं।

पद्मावती—ठीक है। उज्जैन के निवासियों के लिये यह (उदयन का दर्शन) दुर्लभ नहीं है। सौन्दर्य सबके मन को आकर्षित करने वाला होता है।

(तदुपरान्त धाई प्रवेश करती है)

धाई—राजकुमारी की जय हो। हे राजकुमारि जी! आप दे दी गई अर्थात् विवाह निश्चित हो गया।

वासवदत्ता—आर्ये! किसको (दे दी गई)?

धाई—वत्स देश के अधिपति (महाराज) उदयन को।

वासवदत्ता—वे महाराज कुशलपूर्वक तो हैं?

धाई—वे कुशलपूर्वक (ही) आये हैं! उनको राजकुमारी के साथ विवाह-सम्बन्ध भी मान्य है।

वासवदत्ता—महान् अनर्थ हो गया।

धाई—इसमें अनर्थ की क्या बात है?

वासवदत्ता—न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति । [ण हु किञ्चि । तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि त्ति ।]

धात्री—आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति । [अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति ।]

वासवदत्ता—आर्ये ! स्वयमेव तेन वरिता ? [अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ?]

धात्री—नहि नहि । अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता । [णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविञ्जाणवओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः । [एव्वं ! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी—त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्त्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति । [तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धी करोति मे हृदयम् । [जह जह तुवरदि, तह तह अन्धी करेदि मे हिअअं ।]

धात्री—एत्वेतु भर्तृदारिका । [एदु एदु भट्टिदारिआ ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

(इति द्वितीयोऽङ्कः ।)

वासवदत्ता—कुछ भी नहीं। महाराज वासवदत्ता के वियोग से उस प्रकार दुःखी होकर फिर (उसके प्रति) इस प्रकार से उदासीन हो गये (इसलिये मैंने ऐसा कह दिया।)

धाई—श्रीमती जी ! महापुरुषों के हृदय शास्त्रों में विश्वस्त होने के कारण सरलतापूर्वक सामान्यावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

वासवदत्ता—आर्ये ! क्या उन्होंने स्वयं ही (पद्मावती को) वरण किया है ?

धाई—नहीं नहीं। किसी अन्य कार्यवश यहाँ आये हुए उनके अनुरूप कुल, विभिन्न कलाओं का ज्ञान एवं यौवनावस्था तथा (मनोमुग्धकारी) रूपश्री को देखकर महाराज ने स्वयं (पद्मावती को) अर्पित कर दिया।

वासवदत्ता—[अपने मन में] ऐसा ! तो इस विषय में अब आर्यपुत्र का कोई दोष नहीं है।

(दूसरी दासी का प्रवेश करके)

चेटी—देवि ! आप शीघ्रता करें। हमारी महारानी कहती है कि आज ही नक्षत्र उत्तम है। (अतः) आज ही मङ्गलमय-सूत्र का कार्य सम्पन्न होगा।

वासवदत्ता—(अपने मन में) जैसे-जैसे (इस विषय में) शीघ्रता की जा रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय शून्य सा होता जा रहा है।

धाई—आओ राजकुमारि ! आओ।

(सभी लोग निकल जाते हैं)

(दूसरा अङ्क समाप्त)



अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता)

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुश्शाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि। अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। यावद् उपविशामि। धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामिति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा। विवाहामोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं। जाव दाणिं भाअधेअणिव्वुत्तं दुखं विणोदेमि। (परिक्रम्य) अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो। जा उवविसामि। (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ। ण खु अहं पाणाणि परित्तजामि। अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ।]

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी।)

चेटी—क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका? अम्मो! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये! अवन्तिके! कः कालः, त्वामन्विष्यामि। [कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो! इअं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहृदचन्दलेहा विअ अमण्डिदभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा। जाव उवसप्पामि। (उपसृत्य) अय्ये! आवन्तिए! को कालो, तुमं अण्णेसामि।

वासवदत्ता—किंनिमित्तम्। [किंणिमित्तं।]

चेटी—अस्माकं भट्टिनी भणति महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या। [अह्माअं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउत्ता त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या।]

वासवदत्ता—अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम्। [अह कस्स किल गुह्मिदव्वं?]

चेटी—अस्माकं भर्तृदारिकायै। [अह्माअं भट्टिदारिआए।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो! अकरुणाः खल्वीश्वराः। [एदं पि मए कत्तव्वं आसी। अहो। अकरुणा खु इस्सरा।]

चेटी—आर्ये! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा। एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति। शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या। [अय्ये! मा दाणिं अण्णं चिन्तिअ। एसो जामादुओ मणिभूमिए ह्णाअदि सिग्घं दाव गुह्मदु अय्या।]

तृतीय अङ्क

[उसके पश्चात् कुछ सोचती हुई सी वासवदत्ता का प्रवेश]

वासवदत्ता—विवाह की खुशी से परिपूर्ण राजमहल के अन्तःपुर में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ विश्रामोद्यान में चली आई हूँ। तो जब तक दुर्भाग्य से उत्पन्न हुए दुःख को शान्त करती हूँ। (घूमकर) आह ! अनर्थ हो गया। आर्यपुत्र भी अब दूसरे के हो गये। तब तक बैठती हूँ। (बैठकर) चक्रवाकवधू (चकई) निःसन्देह धन्य है जो एक दूसरे अर्थात् चकवा से अलग होकर जीवित नहीं रह पाती मैं तो प्राणों को भी नहीं छोड़ती। मैं अभागिन (केवल) आर्यपुत्र के दर्शन की अभिलाषा से ही जी रही हूँ।

(उसके पश्चात् फूल लेकर दासी प्रवेश करती है)

दासी—अवन्ति देश वाली आर्या कहाँ चली गई ? [घूमकर (और) देख कर] अहा ! ये तो चिन्ता से विक्षिप्त हृदय वाली, ओसकणों से आच्छादित चन्द्रमा की कला की भाँति उदास सी लगती हुई बिना शृङ्गार के ही सुन्दर वेषवाली प्रियङ्गु लता के नीचे पत्थर की शिला पर बठी है। तो तब (उनके) समीप जाती हूँ। (समीप जाकर) देवि अवन्तिके ! (मैं) बहुत देर से आपको ढूंढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—किस कारण से ?

दासी—हमारी स्वामिनी कहती है—आप उच्च कुल में उत्पन्न हुई हैं, प्रेम की मूर्ति हैं एवं (सभी कार्यों में) चतुर हैं, अतएव इस सोहाग की माला को गूंथ दें।

वासवदत्ता—किसके लिए (मैं) माला गूंथं ?

दासी—हमारी राजकुमारी के लिए।

वासवदत्ता—(अपने मन में) यह (कार्य) भी मेरे द्वारा होना था। हाय ! ईश्वर निश्चय ही निर्दयी है।

दासी—हे देवी इस समय (आप) कोई दूसरी बात न सोचें। वह दामाद मणि-मण्डित वेदिका पर स्नान कर रहे हैं। अतः आप शीघ्र ही गूंथ दीजिये।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । हला ! किं दृष्टो जामाता ? [ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं । (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ?]

चेटी—आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च। [आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ ।]

वासवदत्ता—कीदृशी जामाता ? [कीदिसो जामादुओ ?]

चेटी—आर्ये ! भणामि तावत्, नेदृशो दृष्टपूर्वः । [अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपरुवो ।]

वासवदत्ता—हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ! [हला ! भणाहि भणाहि, किं दसणीओ !]

चेटी—शक्यं भणितुं शरचापहीनः ? कामदेव इति । [सक्कं भणिदुं सरचावहीणो खामदेओ त्ति ।]

वासवदत्ता—भवत्वेतावत् [होदु एत्तअं ।]

चेटी—किंनिमित्तं वारयसि ? [किण्णिमित्तं वारेसि ?]

वासवदत्ता—अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्तनं श्रोतुम् । [अजुत्तं परपुरुससङ्कित्तणं सोदुम ।]

चेटी—तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् । [तेण हि गुह्मदु अय्या सिग्घं ।]

वासवदत्ता—इयं गुम्फामि । आनय तावत् । [इअं गुह्मामि । आणेहि दावा ।]

चेटी—गृह्णातु आर्या । [गह्लदु अय्या ।]

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इदं तावदौषधं किं नाम ? [इमं दाव ओसहं किं णाम ?]

चेटी—अविधवाकरणं नाम । [अविहवाकरणं णाम ।]

वासवदत्ता—(वासवदत्ता) इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च। इदं तावदोषधं किं नाम ? [इदं बहुसो गुह्मिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ। (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ?

चेटी—सपत्नीमर्दनं नाम । [सवत्तिमद्दणं णाम ।]

वासवदत्ता—इदं न गुम्फितव्यम् । [इदं ण गुह्मिदव्वं ।]

चेटी—कस्मात् ? [कीस ?]

वासवदत्ता—उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति । [उवरदा तस्स भय्यं, तं णिप्पओअणं त्ति ।]

वासवदत्ता—(अपने मन में) दूसरी बात नहीं सोच सकती हूँ। (प्रकट में) सखी! क्या दामाद जी को देखा।

दासी—हाँ, राजकुमारी के प्रति प्रेम और अपने कौतूहल (जिज्ञासा) के कारण देखा।

वासवदत्ता—दामाद जी कैसे हैं?

दासी—हे देवि! मैं तो (यह) कहती हूँ कि ऐसा (सुन्दर) दामाद (पहले) कभी नहीं देखा।

वासवदत्ता—सखी! कहो, कहो, क्या दर्शनीय है अर्थात् अति सुन्दर है?

दासी—(दामाद जी को) धनुष और बाण से हीन कामदेव कहा जा सकता है।

वासवदत्ता—बस इतना ही रहने दो।

दासी—किस कारण से रोक रही हैं?

वासवदत्ता—पराये पुरुष की प्रशंसा सुनना अनुचित है।

दासी—यदि ऐसा है तो आप शीघ्र ही माला गूँथ दें।

वासवदत्ता—अभी गूँथती हूँ। इधर तो लाओ।

दासी—आप ग्रहण कीजिये।

वासवदत्ता—(थोड़ा हटाकर और देखकर) इस औषधि का क्या नाम है?

दासी—यह औषधि अविधवाकरण नाम की—(सर्वदा) सौभाग्यवती रखने वाली है।

वासवदत्ता—(अपने मन में) मुझे अपने तथा पद्मावती दोनों के लिए इस ही औषधी को बार-बार गूँथना चाहिये (प्रकट में) इस (दूसरी) औषधी का क्या नाम है?

दासी—सपत्नीमर्दन नाम की (सौत के मद को चूर करने वाली)।

वासवदत्ता—यह नहीं गूँथी जानी चाहिये।

दासी—किस कारण से?

वासवदत्ता—उन (उदयन) की (पहली) पत्नी का देहान्त हो चुका है अतः इसको गूँथना व्यर्थ है।

(प्रविश्यापरा)

चेटी—त्वरतां त्वरतामार्या । एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते । [तुवरदु तुवरदु अय्या । एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि]

वासवदत्ता—अयि ! वदामि गृहाणैतत् । [अइ ! वदामि, गह्ण एदं]

चेटी—शोभनम् । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् । [सोहाणं । अय्ये ! गच्छामि दाव अहं]

(उभे निष्क्रान्ते)

वासवदत्ता—गतैषा ! अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । अविदा ! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे । [गदा एसा । अह्हो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । अविदा ! संय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि]

[निष्क्रान्ता ।]

इति तृतीयोऽङ्कः

———

(दूसरी दासी प्रवेश करके)

दासी—देवी जी ! आप शीघ्रता करें । ये दामाद जी सुहागिनों से घिरे हुए अन्तःपुर की चतुश्शाला अर्थात् कोहवर में लाये जा रहे हैं ।

वासवदत्ता—अरी ! मैं तो कहती हूँ कि इसको लो ।

दासी—बहुत सुन्दर (गूँथी गई) देवी जी ! अब मैं जाती हूँ ।

(दोनों दासियों का प्रस्थान)

वासवदत्ता—यह चली गई । हाय ! बड़ा ही अनर्थ हो गया । आर्यपुत्र अर्थात् मेरे पति उदयन भी दूसरे के हो गये । महान् कष्ट है, यदि नींद आ जाये तो पलंग पर अपने दुःख को शान्त करती ।

(चली जाती है ।)

। तीसरा अङ्क समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—[सहर्षम्] भोः ! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेत-विवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः । भोः ! को नामैतज्जानाति तादृशे वय-मनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्याम इति । इदानीं प्रासादेषू उच्चष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इति अनप्सरस्सवासं उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते । एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे । यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि । भोः सुखं नामयपरिभूतमकल्य-वर्तं च । भो ! [दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालोदिट्ठो । भो ? को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु, ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरु-वासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुदठुं ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि । जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि । भो ! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च ।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य ! वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि । [कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो ! एसो अय्यवसन्तओ । (उपगम्य) अय्य । वसन्तअ । को कालो, तुमं अण्णेसामि ।]

विदूषकः—[दृष्ट्वा] किन्निमित्तं भद्रे ! मामन्विष्यसि ? [किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ?]

चेटी—अस्माकं भट्टिनी भणति-अपि स्नातो जामातेति । [अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति ।]

विदूषकः—किन्निमित्तं भवती पृच्छति ? [किंणिमित्तं भोदि, पुच्छदि ?]

चेटी—किमन्यत् सुमनोवर्णकगानयामीति । [किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति ।]

विदूषक—स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् । [ह्लादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं ?]

चेटी—किन्निमित्तं वारयसि भोजनम् ? [किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ?]

विदूषकः—अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः । [अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो ।]

चेटी—ईदृश एव भव । [ईदिसो एव्व होहि ।]

विदूषकः—गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्र भवतः सकाशं गच्छामि । [गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो सआअं गच्छामि ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

चतुर्थ अङ्क

(उसके पश्चात् विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक—(हर्ष के साथ) अजी सौभाग्य से महाराज उदयन के अभीष्ट मङ्गलमय विवाह का रमणीय समय हम लोगों ने देखा। कहो जी, यह कौन जानता था कि उस प्रकार के अनर्थ रूपी जल के भँवर अर्थात् राज्यापहरण एवं वासवदत्ता-मरण से नष्ट उत्साह वाले हम लोग पुनः बाहर निकल आवेंगे अर्थात् फिर उस हर्षोल्लास को प्राप्त करेंगे। इस समय (फिर) राजमहलों में रहते हैं, रनिवास अर्थात् अन्तःपुर की बावड़ियों में स्नान करते हैं, स्वभावतः मीठे एवं सुकोमल मिष्ठान्न को खाते हुए (केवल) अप्सराओं के सहवास से रहित स्वर्ग के आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। किन्तु एक बड़ा भारी दोष है कि मेरा खाना अच्छी तरह से नहीं पच रहा है, (इसी कारण से) कोमल गद्दे वाली शय्या पर नींद भी नहीं आती। ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरा मन अङ्ग-प्रत्यङ्ग वातरक्त रोग से आक्रान्त हो गया है। अजी! रोग से पीड़ित शरीर वाला एवं जिसे कलेवा (प्रातभोजन) न मिलता हो वह मनुष्य सभी सांसारिक सुखों का उपभोग करता हुआ भी सुखी नहीं माना जाता।

(तदुपरान्त दासी प्रवेश करती है)

दासी—आर्य वसन्तक कहाँ चले गये? (घूमकर और देखकर) अच्छा। आर्य वसन्तक ये हैं। (निकट जाकर) माननीय वसन्तक जी! कितनी देर हो गयी मैं आपको खोज रही हूँ।

विदूषक—(देखकर) हे देवि! मुझको किस कार्यवश ढूंढ रही हो?

दासी—मेरी स्वामिनी पूछती है—क्या जामाता स्नान कर चुके?

विदूषक—देवि (तुम्हारी स्वामिनी) क्यों पूछ रही है?

दासी—दूसरी क्या बात है? फूल चन्दन इत्यादि ले जाऊँ—इसलिए।

विदूषक—महाराज स्नान कर चुके हैं। आप भोजन के अतिरिक्त सभी (आवश्यक) पदार्थ लावें।

दासी—भोजन के लिये (आप) क्यों मना कर रहे हैं?

विदूषक—मैं बड़ा मन्दभाग्य हूँ, क्योंकि कोयल की आँख जिस प्रकार उलटती है उसी प्रकार मेरे पेट में भी उलट-फेर हो गया है (जिससे भोजन समय पर नहीं पचता)।

दासी—आप सर्वदा इसी अवस्था में रहें।

विदूषक—आप जाइये। अब मैं भी महाराजा के पास जाता हूँ।

(दोनों निकलते हैं)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती अवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च ।)

चेटी—किन्निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ? [किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ?]

पद्मावती—हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति । [हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति ।]

चेटी–भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः । [भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालान्तरिदेहिं विअ मौत्तिआलम्वएहिं आइदाणि कुसुमेहिं ।]

पद्मावती—हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ? [हला । जदि एव्वं, किं दाणिं बिलम्बेसि ?]

चेटी—तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि । [तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए, मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव अहं वि कुसुमावचअं करोमि ।]

पद्मावती—आर्ये ! किमत्रोपविशावः ! [अय्ये ! किं एत्थ उपविसामो !]

वासवदत्ता—एवं भवतु । [एव्वं होदु ।]

(उभे उपविशतः)

चेटी—[तथा कृत्वा] पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनः शिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् । [पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिका अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलि ।]

पद्मावती—[दृष्टवा] अहो ! विचित्रता कुसुमानम् । पश्यतु वेश्यत्वार्या । [अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या ।]

वासवदत्ता—अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् । [अहो ! दस्सणीअदाकुसुमाणं ।]

चेटी—भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ? [भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ।]

पद्मावती—हला ! मा मा भूयोऽवचित्य । [हला ! मा मा भूयो अवइणिअ ।]

वासवदत्ता—हला ! किंनिमित्तं वारयसि ? [हला ! किंणिमित्तं वारेसि ?]

पद्मावती—आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धि दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् । [अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धि पेक्खिअ सम्मणिदा भवेअं ।]

प्रवेशक

(उसके बाद परिजनों सहित पद्मावती एवं अवन्तिका नगरी के वेष को धारण किये हुए वासवदत्ता प्रवेश करती है)

दासी—राजकुमारी जी ! क्रीड़ा उद्यान में आप किस कार्य के लिए आई ?

पद्मावती--अरी ! मैं जरा यह देख रही हूँ कि हारसिंगार के वे गुच्छे फूले या नहीं ?

दासी—राजकुमारी ! वे तो खिल गये, बीच में मूँगों से युक्त मोतियों के हारों की भाँति फूलों से व्याप्त हैं।

पद्मावती—सखि ! यदि ऐसा है, तो अब क्यों देर करती हो ?

दासी—तो फिर इस पत्थर के पटरे पर राजकुमारी क्षणभर बैठें। तब तक मैं भी फूलों का चयन करती हूँ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या हम दोनों यहाँ बैठ जायें ?

वासवदत्ता—ऐसा ही हो।

(दोनों बैठ जाती हैं)

दासी—[वैसा करके] देखो-देखो राजकुमारी ! आधे भाग में मैनसिल (गेरी) के टुकड़ों की भाँति हारसिंगार के फूलों से मेरी अञ्जलि भर गई।

पद्मावती—(देखकर) आहा ! फूलों की विचित्रता। देखो, देखो आर्या।

वासवदत्ता--आहा ! फूलों की दर्शनीयता। (सुन्दरता)।

दासी--राजकुमारी ! क्या फिर चुनूं ?

पद्मावती—सखि ! नहीं, नहीं और मत चुनो।

वासवदत्ता—सखि क्यों रोक रही हो ?

पद्मावती—आर्यपुत्र के द्वारा यहाँ आकर और इस फूलों के वैभव को देख लिए जाने पर मैं सम्मानित हो जाऊँगी।

वासवदत्ता—हला ! प्रियस्ते भर्ता ? [हला ! पिआ दे भत्ता ।]

पद्मावती—आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहोत्कण्ठिता भवामि । [अय्ये ! ण जाणामि अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि ।]

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दुष्करं खल्वहं करोमि । इयमपि मामैवं मन्त्रयते । [दुक्खरं खु अहं करेमि । इअं वि णाम एव्वं मन्तेदि ।]

चेटी—अभिजातैं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितम्—प्रियो मे भर्त्तेति । [अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं पिओ मे भत्तेति ।]

पद्मावती—एक: खलु मे सन्देह: [एक्को खु मे सन्देहो ।]

वासवदत्ता—किं किम् ? [किं किं ?]

पद्मावती—यथा ममार्यपुत्रस्थैवार्याया वासवदत्ताया इति । [जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति ?]

वासवदत्ता—अतोऽप्यधिकम् ? [अदो वि अहिअं ?]

पद्मावती—कथं त्वं जानासि ? [कहं तुवं जाणासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हम् आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्त: समुदाचार: । एवं तावद् भणिष्यामि । यद्यल्पः स्नेह:, सा स्वजनं न परित्यजति । [हं, अय्यउत्त पक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो । एव्वं दाव भणिस्सं (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि ।]

पद्मावती—भवितव्यम् । [होदव्वं ।]

चेटी—भर्तृदारिके ! साधु भर्त्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति । [भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति ।]

पद्मावती—उक्तो ममार्यपुत्र: । [उत्तो मए अय्यउत्तो ।]

वासवदत्ता—तत: किं भणितम् ? तदो किं भणिदं ?]

पद्मावती—अभणित्वा किंचिद्दीर्घं निश्वस्य तूष्णीक: संवृत्त: । [अभणिअ किंचिदिग्घं णिस्ससिअ तुह्णींओ संवुत्ता ।]

वासवदत्ता—ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ? [तदो तुवं किं विअ तक्केसि]

पद्मावती—तर्कयाम्यार्याया वासवदत्तायाः गुणान् स्मृत्वा दक्षिणताया समाग्रतो न रोदितीति । [तक्के अय्याए वासवदत्ताए—गुणाणि सुमरिअ दक्खिण-दाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति ।]

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्य भवेत् । [धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे ।]

(तत: प्रविशति राजा विदूषकश्च)

विदूषक:—ही ! ही ! प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावत् भवान् । [ही ! ही ! पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलावादर-मणि ज्जं पमदवणं इदो दाव भवं ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ? अयमहागच्छामि ।

वासवदत्ता—सखि ! क्या पति तुम्हें प्रिय हैं ?

पद्मावती—आर्ये ! नहीं जानती । पर आर्यपुत्र के बिना मैं बेचैन रहती हूँ ।

वासवदत्ता—[मन ही मन] निश्चय ही मुझे बड़ा कठिन कार्य करना पड़ रहा है और यह भी तो ऐसा ही कह रही है ।

दासी—राजकुमारी ने उच्च कुल के अनुरूप ही कहा कि मुझे पति प्रिय हैं ।

पद्मावती—मुझे बस एक ही सन्देह है ।

वासवदत्ता—क्या, क्या ?

पद्मावती—जैसे आर्यपुत्र मुझे प्रिय हैं, क्या—वैसे आर्या वासवदत्ता को भी प्रिय थे ?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक ।

पद्मावती—तुम कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—(मन ही मन) हूँ, आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात के कारण मुझसे उचित व्यवहार का उल्लंघन हो गया । अच्छा तो ऐसा कहूँ । (प्रकट रूप में) यदि स्नेह कम होता तो वह आत्मीय जनों को न छोड़ती ।

पद्मावती—(ऐसा ही) होना चाहिये ।

दासी—राजकुमारी ! पति से अच्छी तरह कहना, "मैं भी वीणा सीखूंगी" ।

पद्मावती—मैंने आर्यपुत्र से कहा था ।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—बिना कुछ कहे ही लम्बी साँस लेकर चुप हो गए ।

वासवदत्ता—उससे तुम क्या सोचती हो ?

पद्मावती—सोचती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद कर उदारता के कारण वे मेरे सामने रोते नहीं हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) यदि यह सत्य है तो मैं धन्य हूँ ।

(उसके बाद राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं)

विदूषक—ओहो ? राशिभूत तथा गिरे हुए बन्धूक (दुपहरिया) के फूलों के छितराए जाने से यह प्रमदवन कितना सुन्दर है । आप तनिक इधर से पधारिए ।

राजा—मित्र वसन्तक ? लो मैं यह आया ।

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गतं
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयम्
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ? ।।१।।

विदूषकः—कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती ! लतामण्डपं गता भवेत् उताहो असलकुसुमसंचितं व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत् अथवा अधिककटुकगंधसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसंकुलं दारुपर्वतकं गता भवेत् । हि ! हि ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपंक्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावत् भवान् ।

कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावती !- लदामंडवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसंचिदं बग्घचम्मागुंठिदं विअपव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअं गदा भवे, आदु अविअकडुअगंधसत्तच्छदवणं पविट्ठा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसंकुलं दारुपव्वदअं गदा भवे । (अर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही सरअकालणिम्मले अंतरिक्खे पसारिअबलदेवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाब समाहिदं गच्छन्ति पेक्खदु दाव भवं] ।

राजा—वयस्य ! पश्याम्येनाम्—
ऋज्वायतां च विरलां नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य,
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ।२।।

अन्वयः—मयि उज्जयिनीं गते (सति) तदा स्वैरं-अवन्तिराजतनयां दृष्ट्वा कामपि अवस्थां गते (सति) कामेन पञ्चेषवः पातिताः । तैः अद्यापि हृदयं सशल्यं एव, भूयश्च वयं विद्धाः । यदा मदनः पञ्चेषुः-अयं षष्ठः शरः कथं पातितः ? ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या

मयि—उदयने, उज्जयिनीं-तन्नामनगरीं गते प्राप्ते सति, तदा तस्मिन् काले अवन्तिराजतनयां अवन्तिदेशाधिपस्य पुत्रीं वासवदत्तां स्वैरं यथेच्छं दृष्ट्वा विलोक्य कामपि-अनिर्वचनीयां अवस्थां मूढतामित्यर्थः गते प्राप्ते सति कामेन मदनेन पंचेषवः स्वकीयाः पंचबाणाः पातिताः निक्षिप्ताः । तैः मदनपातितैर्बाणैरद्यापि हृदय सशल्यं कीलकान्वितं वर्तते, तथापि निर्दयेन मदनेन पुनरपि वयं विद्धा शरसात्कृताः । यदा मदनः कामः पंचेषु पंचबाण इति ख्यातः तदा अयं षष्ठः शरः कथं,-पातितः-प्रक्षिप्तः, मयि कुतः प्रयुक्त इत्याशयः ।।१।।

अन्वयः—ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च निवर्तनेषु च सप्तर्षिवंशकुटिलां, (अतएव) निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य अम्बरतलस्य विवज्यमानां सीमामिव (एनां पश्यामि) ।।२।।

'मेरे उज्जयिनी जाने पर और तब अवन्तिराजकुमारी को जी भर देखकर किसी अनिर्वचनीय दशा को प्राप्त हो जाने पर कामदेव ने मुझ पर पाँचों बाण छोड़ दिये। उनसे मेरा हृदय अभी तक घायल है, और फिर भी हमें बींध दिया गया। जब कामदेव के पास केवल पाँच ही बाण हैं तो यह छठा बाण उसने कहाँ से फेंका ॥१॥

विदूषक—भला देवी पद्मावती कहाँ चली गई! लताकुञ्ज में गई होंगी, अथवा-असन (वन्धूक) के फूलों से व्याप्त, बाघ के चर्म के मण्डित की भाँति "पर्वततिलक" नामक पत्थर के पटरे पर चली गई होंगी,—या अधिक तीव्र गन्ध वाले सप्तछन्द (आबनूस) के वन में प्रविष्ट हो गई होंगी, अथवा अनेक पशु-पक्षियों के चित्रों से पूर्ण काष्ठ पर्वत पर चली गई होंगी। (ऊपर देखकर) अहा! शरत्काल के कारण निर्मल आकाश में फैली हुई बलदेव की भुजाओं के समान दर्शनीय (शोभनीय) समरूप में जाती हुई सारसपंक्ति को तनिक देखो तो सही।

राजा—मित्र! देख रहा हूँ इसे—'कभी सीधी और फैली हुई,—कभी छीदी, और ऊँची-नीची, तथा मोड़ों पर सप्तर्षिमण्डल के समान टेढ़ी और इसीलिए छोड़ी हुई केंचुली वाले सर्प के उदर की भाँति निर्मल आकाश तल को विभक्त होती हुई सीमा रेखा के सदृश—(इसे देख रहा हूँ) ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या

ऋजु सरला आयता विस्तृता च तां ऋज्वायतां, विरलां सावकाशां च, नतोन्नतां उच्चावचां नीचोच्चप्रदेशेषु विद्यमानां वा, निवर्तनेषु तिर्यक् परिवर्तनेषु च सप्तर्षिवशस्तन्नाम तारकगणः तद्वत्कुटिलां वक्रामिति सप्तर्षिवंशकुटिलां, अत एव निर्मुच्यमानः मुच्यमानकञ्चुकः कञ्चुकहीन इत्यर्थः—यो भुजगः सर्पस्तस्यउदरमिव निर्मलस्य स्वच्छस्य अम्बरतलस्य-गगनतलस्य विभज्यमानां क्रियमाणविभागां सीमां मर्यादारेखामिव एनां सारसपंक्तिं पश्यामि ॥२॥

विशेष

पद्य १—(क) प्रस्तुत पद्य में भास ने अपनी कमनीय काव्यशैली द्वारा ध्वनित किया है कि वासवदत्ता के प्रति उदयन का प्रेम अब ज्यों का त्यों बना हुआ है, साथ ही उसके हृदय में पद्मावती के प्रति भी प्रेम का उदय हो रहा है।

(ख) इस पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द हैं ॥१॥

पद्य २—(क) महान् कवि भास ने इस पद्य में सारसपंक्ति की गति का हृदयग्राही स्वाभाविक चित्रण किया है अतः यहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार है। साथ ही यहाँ सारसपंक्ति को, विभक्त होती हुई गगनतल की सीमा रेखा के रूप में सम्भावित किया है अतः उत्प्रेक्षा की छटा भी मनोहारिणी है। लक्षण—

"संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्"।

यहाँ "वसन्ततिलका" छन्द है। लक्षण—

उक्तावसन्ततिलका तभजाजगौगः ॥

चेटी--पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डुररमणीयां सारसपंक्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो ! भर्त्ता। [पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एदं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति। अम्मो भट्टा।]

पद्मावती—हम् ! आर्यपुत्रः आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः। [हं ! अय्यउत्तो ! अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि। ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो।]

वासवदत्ता—एवं भवतु। [एव्वं होदु।]

[तथा कुर्वन्ति]

विदूषकः—तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्। [तत्तहोदी पदुमावती इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे]

राजा—कथं भवान् जानाति ?

विदूषक—इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्। [इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआ गुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं]

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक ?

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] वसन्तकसंकीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्तते इति। [वसन्तअसंकित्तणेण अहं पुण जाणामि उज्जइणीए वत्तामि त्ति।]

राजा--वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावती प्रतीक्षिष्यावहे।

विदूषक--भोस्तथा। ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः। तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशावः। [भो ! तह (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सुरअकालतिक्खो दुस्सहो आदवो। ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामो]।

राजा--बाढम्, गच्छाग्रतः।

विदूषक--एवं भवतु। [एव्वं होदु]

(उभौ परिक्रामतः।)

पद्मावती—सर्वमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः। किमिदानीं कुर्मः। [सव्वं आउलं कत्तुकामो अय्यवसंतओ। किं दाणि करेह्म]।

चेटी—भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि। [भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीणं ओलम्बलदं ओधूय भट्टारं वारइस्सं]।

पद्मावती—एवं कुरु। [एव्वं करेहि]।

(चेटी तथा करोति)

विदूषक—अविह अविह तिष्ठतु तिष्ठतु, तावत् भवान्। [अविहा अविहा चिट्ठदु दाव भवं]।

चेटी—देखिये, देखियेगा राजकुमारी ? श्वेत कमल की माला के समान धवल तथा सुन्दर एवं समरूप से जाती हुई सारसों की पंक्ति को देखियेगा। अरे ! स्वामी ।

पद्मावती—हूँ ! आर्यपुत्र ! आर्ये ! तुम्हारे कारण ही आर्यपुत्र के दर्शन का लाभ त्याग रही हूँ। तो चलो इस माधवी लता कुञ्ज में चलें।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही (होवे)।

(वैसा ही करते हैं)

विदूषक—पूजनीया पद्मावती यहाँ आकर चली गई होंगी।

राजा—आप यह कैसे जानते हैं ?

विदूषक—आप इन टूटे हुए फूलों वाले हारसिंगार के गुच्छों को तो देखिए।

राजा—अहा ! वसन्तक। फूलों की विचित्रता ! (क्या यही मनोहारिणी है।)

वासवदत्ता—[मन ही मन] वसन्तक के नामोच्चारण से तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं उज्जयिनी में ही हूँ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिलातल पर बैठे हुए हम दोनों पद्मावती की प्रतीक्षा करते हैं।

विदूषक—अजी ! ठीक है। (बैठकर तथा उठकर) ओह, शरद् ऋतु की धूप असह्य है। तो चलो इस माधवी लता के कुञ्ज में प्रवेश करें।

राजा—ठीक है, चलो आगे।

विदूषक—ऐसा ही हो।

(दोनों घूमते हैं)

पद्मावती—आर्य वसन्तक सब चौपट करना चाहते हैं। अब क्या करें।

दासी—राजकुमारी ! इस भौंरों से लदी सहायक लता को हिलाकर राजा को रोकती हूँ।

पद्मावती—ऐसा ही करो।

(दासी वैसा ही करती है)

विदूषक—बचाओ, बचाओ। ठहरिए जरा आप।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषक—दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि । [दासिए पुत्तेहिं महुअरेहिं पीड़िदो ह्मि] ।

राजा—मा मा भवानेवम् । मधुकरसंत्रासः परिहार्यः । पश्य–

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरूपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्ताबियुक्ताः स्युः ॥३॥

तस्मादिहैवासिष्यामहे

विदूषक—एवं भवतु । । (एव्वं होदु) ।

(उभावुपविशतः ।)

राजा—(अवलोक्य)

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम् ।
नूनं कृचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

अन्वयः—मधुमदकलाः मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढाः मधुकरा पादन्यासविषण्णाः (सन्तः) वयमिव कान्ताव्रियुक्ताः स्युः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

मधुमदकलाः—मधुनः पुष्परसस्य यो मदस्तेन कला अव्यक्तमधुराः, अव्यक्त मधुरं यथा तथा गुञ्जन्त इति भावः—तथा मदनार्ताभिः=मदनेन मन्मथेन आर्ताभिः पीड़िताभिः प्रियाभिः उपगूढाः आलिङ्गिताः मधुकराः भ्रमराः पादन्यासविषण्णाः अस्माकं पादयोर्न्यासेन लतामण्डपाभ्यन्तरे अस्मत्कृतेन पादक्षेपेणेत्यर्थः विषण्णाः खिन्ना सन्त इति शेषः वयमिव तथा अहं तथैवत्याशयः कान्तावियुक्ताः प्रियाविरहिताः स्युर्भवेयु ॥३॥

अन्वयः—पुष्पाणि पादाक्रान्तानि च इदं शिलातलं सोष्म । नूनम् काचित् इह आसीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

पुष्पाणि—कुसुमानि, पादाक्रान्तानि—पादैः चरणैः आक्रान्तानि—दलितानि (वर्तन्ते), इदं, पुरो स्थितं, शिलातलं—प्रस्तरखण्डं, सोष्म—ऊष्मणा सहितं (अस्ति) । (अतः) नूनं—निश्चितं, इह—अत्र, आसीना—उपविष्टा, काचित्—स्त्री, माम्—राजानं (उदयनमित्यर्थ दृष्ट्वा) पश्य, सहसा—झटिति गता याता ॥४॥

विशेष

पद्य ३—वयमिव कान्तावियुक्ताः—हमारी तरह कान्तावियुक्त अर्थात् जैसे मैं अपनी कान्ता वासवदत्ता से वियुक्त हूँ उसी तरह कहीं ये भौंरे भी अपनी कान्ताओं (भ्रमरियों) से वियुक्त न हो जाये। उदयन की यह उक्ति उसके धीरललित एवं क्रोशत्व के अनुरूप होने के साथ ही–वासवदत्ता के प्रति उसके अनन्य प्रेम की द्योतक है । "कान्ता" शब्द सामान्यतः पत्नी के लिए प्रयुक्त होता है परन्तु इसका मुख्यार्थ "प्रेयसी" है । इस पद्य में कान्ता शब्द विशेष महत्व का है । उदयन का विवाह

राजा—किस लिए ?

विदूषक—दासी पुत्र (दुष्ट) भौंरों से परेशान हूँ ।

राजा—नहीं, नहीं आप ऐसा मत करो (भौंरों को डराना नहीं चाहिये ।) देखो—मकरन्द के मद से अस्पष्ट एवं मधुर गुञ्जार करते हुए काम पीड़ित प्रियाओं से आलिंगित भौंरे हमारे पैर रखने से दुःखी होते हुए हमारी तरह ही कान्ताओं से वियुक्त हो जायेंगे ।।३।।

इसलिये हम दोनों यहीं बैठते हैं ।

विदूषक—ऐसा ही हो ।

(दोनों बैठ जाते हैं)

राजा—(देखकर) ।

पुष्प पैरों से दबे हुए हैं, और यह शिलातल भी गरम है । (अतः) निश्चित रूप से यहाँ बैठी हुई कोई स्त्री मुझे (आता हुआ) देखकर शीघ्रतापूर्वक चली गई ।।४।।

पद्मावती से हो चुका है अतः वह पत्नियुक्त है । वासवदत्ता उसकी कान्ता थी जोकि अब समाज की दृष्टि में मर चुकी है--अतः उदयन पत्नी युक्त हुए भी अपने को कान्तावियुक्त समझता है । वासवदत्ता के मरने पर पत्नि का स्थान तो पद्मावती ने ले लिया, परन्तु कान्ता का स्थान अभी रिक्त ही है और यह रिक्तता उदयन को सदा ही विह्वल किए रखती है । उदयन की इस उक्ति से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यद्यपि उसके हृदय में पद्मावती के प्रति प्रेम का उदय हो रहा है, परन्तु वासवदत्ता के प्रति उसका प्रणय ज्यों का त्यों—बना हुआ है ।

(२) इस पद्य में उपमा अलङ्कार तथा "आर्या" छन्द है ।।३।।

पद्य ४—प्रवेश द्वार की ओर से आये राजा के आगमन से किसी के शीघ्रतापूर्वक शिलातल को छोड़कर छिप जाने का आभास राजा को पूर्व ही हो चुका है । यद्यपि यह महाराज उदयन की सूक्ष्मदर्शिता का परिचायक है तथापि आगे का संवाद जिसमें आर्य वसन्तक (विदूषक) द्वारा आनन्दवन् बिल्कुल सूना बतलाया गया है कुछ युक्तिसंगत-सा प्रतीत नहीं होता । यही कारण है कि कई संस्करणों में राजा =(अवलोक्य) समेत इस श्लोक का पाठ नहीं मिलता । नाटकीय दृष्टि से यह उपयुक्त भी नहीं है और न ही इसके न होने से कथानक की किसी परम्परा में ही बाधा उपस्थित होती है, किन्तु काव्य की दृष्टि से यह एक सुन्दर श्लोक है । यह गुणचन्द्र के 'नाटचदर्पण' में निम्नरूप में उद्धृत है—'पद्या भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिका मण्डप शिलातलमवलोक्य वत्सराजः पादक्रान्तानि···इत्यादि । यद्यपि इस पाठ की अनुपस्थिति से नाटच-परम्परा में कोई बाधा नहीं पड़ती, फिर भी पाठक इस सुन्दर रचना से वंचित न रह जाय इसलिये यहां इसका समावेश कर दिया गया है ।।४।।

चेटी—भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् [भट्टिदारिए ! रुद्धा: खुम्ह वयं] ।

पद्मावती—दिष्टयोपविष्ट आर्यपुत्रः । [दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो] ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिष्टया प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः । [दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो] ।

चेटी—भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः । [भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी ।]

वासवदत्ता—एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः । [एसा खु महुअराणं अविणआदो कास-कुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी ।]

पद्मावती—युज्यते [जुज्जई] !

विदूषकः—भो ! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम् । प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति । पृच्छामि भवन्तम् । [भो ! सुण्णं खु इदं पमदवणं । पुच्छिदव्वं किञ्चिअत्थि । पुच्छामि भवन्तं ।]

राजा—छन्दतः ।

विदूषकः—का भवतः प्रिया ? तदानीं तत्र भवति वासवदत्ता इदानी पद्मावती वा [का भवदो पिआ ? तदाणि तत्तहोदो वासवदत्ता इदाणिं पदुमावदी वा ।]

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

पद्मावती—हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्तं आर्यपुत्रः । [हला ! जादिसे सङ्कटे निक्खित्तो अय्यउत्तो ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अहं च मन्दभागा । [अहं अ मन्दभागा ।]

विदूषकः—स्वैरं स्वैरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता । [सेरं सेरं भणादु भवं । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा ।]

राजा—वयस्य ! न खलु न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

पद्मावती—एतावता भणितमार्यपुत्रेण । [एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण ।]

विदूषकः—भोः ! सत्येन शपामि, कस्यापि नाख्यास्ये । एषा सन्दष्टा मे जिह्वा । [भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं एसा सन्दट्ठा मे जीहा ।]

राजा—सखे ! नोत्सहे वक्तुम् ।

पद्मावती—अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदयं न जानाति । [अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्तएण हिअअं ण जाणादि ।]

विदूषकः—किं न भणति मम ? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम् । एष रुद्धोऽत्र भवान् [किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्क पदं वि गमिदुं । एसो रुद्धो अत्त भवं ।]

राजा—किं बलात्कारेण ?

विदूषकः—आम् बलात्कारेण । [आम, बलक्कारेण ।]

दासी—राजकुमारी जी ! हम सब यहाँ पर रोक ली गई हैं ।

पद्मावती—सौभाग्य से आर्य (यहीं) बैठ गये ।

वासवदत्ता—(मन में) सौभाग्य से स्वामी शरीर से स्वस्थ है ।

दासी—राजकुमारी जी ! आर्या (वासवदत्ता) की आँखें आंसुओं से भर गई हैं ।

वासवदत्ता—यह तो भौंरों की धृष्टता के कारण कास पुष्प की धूलि के पड़ जाने से मेरी आँखों में पानी आ गया है ।

पद्मावती—ठीक ही है, (ऐसा हो सकता है ।)

विदूषक—महाराज ! यह प्रमदवन (इस समय) बिल्कुल सूना है । आपसे कुछ पूछना है । (अतः) पूछता हूँ ।

राजा—निःसंकोच पूछो ।

विदूषक—उस समय की माननीय वासवदत्ता और आज की पद्मावती में कौन अधिक प्रिय है ?

राजा—क्यों इस समय तुम मुझे बड़े आदरयुक्त संकट में डाल रहे हो ?

पद्मावती—जिस संकट में आर्यपुत्र गिराये गये हैं (वैसे ही मैं भी) । (कहने का तात्पर्य यह है कि पुत्र का वर्तमान उत्तर ही पद्मावती के जीवन के दुःख-सुख का कारण बन सकता है ।)

वासवदत्ता—(मन में ही) मैं भी मन्दभागिनी (उसी संकट में गिराई गई ।)

विदूषक—निःसंकोचपूर्वक आप कहें । (क्योंकि) एक तो मर गई और दूसरी पास में नहीं हैं ।

राजा—हे मित्र ! मैं नहीं कहूँगा । (क्योंकि) तुम वाचाल हो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ने इतने से ही । (अपना मनोभाव) कह दिया ।

विदूषक—हे राजन ! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि किसी से भी नहीं कहूँगा । यह मैंने अपनी जीभ काट ली ।

राजा—मित्र ! कहने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ ।

पद्मावती—हाय ! इनकी हठवादिता ! इतने पर भी हृदय के भावों को नहीं समझ पा रहे हैं ।

विदूषक—क्या (आप) मुझसे नहीं कहते हैं ? बिना बताये इस शिलाखण्ड से अन्यत्र एक पग भी जाने में समर्थ नहीं हो सकते । यह आप यहीं रोक लिये गये ।

राजा—क्या जबर्दस्ती ?

विदूषक—हाँ, बलपूर्वक ।

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत् ।

विदूषकः—प्रसीदतु प्रसीदतु भवान् । वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि । [पसीददु पसीददु भवं । वअस्सभावेण साविदो सि, जई सच्चं ण भणसि ।]

राजा—का गतिः ? श्रूयताम्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ।।५।।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते । [भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिवेदस्स । अहो ! अञ्ञावासं पि एत्थं बहुगुणं सम्पजइ ।]

चेटी—भर्तृदारिके ! अदाक्षिण्यः खलु भर्त्ता । [भट्टिदारिए । अदक्खिञ्जो खु भट्टा ।]

पद्मावती—हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्या या वासवदत्ताया गुणान् स्मरति । [हला ! मा मा एव्वं । सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि समरदि ।]

वासवदत्ता—भद्रे अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् । [भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं ।]

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

पद्मावती—आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः । [अय्यउत्तो मि वसन्तओ संवुत्तो ।]

विदूषकः—किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते । [किं मे विप्पलविदेण । उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ ।]

राजा—वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषकः—किं मामपि बलात्कारेण ? [किं मं पि बलक्कारेण ?]

अन्वयः—तद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैः मम बहुमता । वासवदत्ताबद्धम् मे मनः तु न तावत् हरति ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या

यद्यपि, पद्मावती, दर्शकभगिनी उदयनस्य वर्तमान, पत्नी, रूपशीलमाधुर्यैः रूपं सौन्दर्यं, शीलं सच्चरितं माधुर्यं प्रियभाषिता चेत्येतैः कारणभूतगुणैः, मम मे, बहुमता अत्यादृता वर्तते तथापि बहुमानास्पदत्वेऽपि सा वासवदत्ताबद्धं वासवदत्तायां पूर्वपत्न्यामाबद्धम् आसक्तं मे मम, मनः चेतः तु न तावत् हरति चोरयति, स्वोन्मुखं न करोति इति यावत् । अयं भावः पद्मावत्याः सौन्दर्यादिपुगुणेपु लुब्धोऽहं तत्र । सखे ! बहुमानं वहामि परं वासवदत्ता प्रति पाशविवशं मे मनस्तया हर्तुं न शक्यते कथमपीत्यर्थः । आर्यावृत्तम् ।।५।।

राजा—तो (मैं भी) देखता हूँ (कि कैसे तुम मेरे साथ बल प्रयोग करते हो)।

विदूषक—मान जाइये, मान जाइये महाराज।

आपको (मेरी) मित्रता की सौगन्ध, यदि सच्ची बातें नहीं कहते।

राजा—क्या करूँ (बाध्य हूँ)। सुनो—

यद्यपि पद्मावती (अपने) रूप, शील एवं माधुर्य के कारण मुझे अत्यन्त प्रिय है तथापि वासवदत्ता में (पूर्णतया) अनुरक्त मेरे मन को आकर्षित नहीं कर पाती।

वासवदत्ता—(मन में) बस बस। इस क्लेश का पुरस्कार दे दिया (अर्थात् जो मैंने इतना कष्ट उठाया उसका पुरस्कार पति के प्रति पूर्ण प्रेम रूप में प्राप्त हो गया) यहाँ छिपकर रहना भी बहुत गुणकारी सिद्ध हो रहा है।

दासी—राजकुमारी जी! राजा में उदारता नहीं है।

पद्मावती—सखि! ऐसा कहना उचित नहीं। आर्यपुत्र की यही उदारता है कि वे अभी तक आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करते हैं।

वासवदत्ता—भद्रे यह तुमने अपने ऊँचे कुल के अनुरूप ही कहा है।

राजा—मैंने तो कह दिया। अब आप कहें। आपको कौन प्रिय है, उस समय की वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती?

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसन्तक ही हो गये।

विदूषक—मेरे अनर्गल प्रलाप से क्या लाभ? मेरे लिए तो दोनों आर्यायें माननीय हैं।

विदूषक—क्या आप भी मुझसे जबर्दस्ती [सुनना चाहते हैं?]

विशेष

पद्य ५—विदूषक द्वारा उत्पन्न की गई इन विशेष परिस्थितियों में राजा का प्रस्तुत उत्तर उनकी बुद्धिमत्ता का आभास कराता है। मरणोपरान्त वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम का प्रदर्शन महाराज उदयन की उदारता का परिचायक है ॥५॥

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण ।

विदूषकः—तेन हि न शक्यं श्रोतुम् । [तेण हि ण सक्कं सोदुं ।]

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः ! स्वैरं स्वैरभिधीयताम् ।

विदूषकः—इदानीं शृणोतु भवान् । तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या । अयं चापरो महान् गुणः स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता-कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति । [इदाणिं सुणादु भवं । तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा । तत्तहोदी पदुमावती तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ सदक्खिणा । अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति ।]

वासवदत्ता—भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदानीमेताम् । [भोदु भोदु-वसन्तअ ! सुमरेहि दाणिं एदं ।]

राजा-भवतु भवतु, वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता । कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता । [अविहा वासवदत्ता । कहिं वासवदत्ता । चिरा खु उवरदा वासवदत्ता ।]

राजा—[सविषादम्] एवम् ? उपरता ।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ।।६।।

पद्मावती—रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः । [रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ ।]

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि । अहो ! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते । [भोदु, भोदु, विस्सत्थह्मि । अहो ! पिअं णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि ।]

विदूषकः—धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदृशमिदानीमेतत् । [धारदु, धारदु भवं ! अणदिक्कमणीओ हि विही ईदिसं दाणिं एदं ।]

राजा—वयस्य ! न जानाति भवानवस्थाम् ? कुतः—

अन्वयः—त्वया अनेन परिहासेन मे मनः व्याक्षिप्तम् । ततः पूर्वाभ्यासेन इयं वाणी तथैव निःसृता ।।६।।

संस्कृत-व्याख्या

अनेन पूर्वोक्तेन, परिहासेन सलीलवचसा त्वया मे मम मनो मदीयं चेतः व्याक्षिप्तम्—चञ्चलीकृतम् । ततः तस्मात् हेतोः पूर्वाभ्यासेन-प्राक्कालिकसंस्कार-बलात्, इयम्—एषा, वाणी, तथैव तत्कालसदृश्येव निःसृता-निर्गता मन्मुखादिति शेषः । अनुष्टुप् वृत्तम् ।।६।।

राजा—और क्या, जबर्दस्ती से ।

विदूषक—तब तो नहीं सुना जा सकता ।

राजा—प्रसन्न होइये महाब्राह्मण जी–प्रसन्न होइये । (आप) अपनी इच्छा से ही कहिये ।

विदूषक—तो सुनिये आप । माननीय वासवदत्ता मुझे अधिक सम्मत हैं । आर्या पद्मावती युवती, सुन्दर, क्रोधहीन, अभिमान रहित, मधुरभाषिणी तथा सभी लोगों पर समान अनुराग रखने वाली है । यह भी दूसरा बड़ा गुण है कि आर्या वासवदत्ता 'आर्य वसन्तक कहाँ गये' इस प्रकार खोजती हुई सुस्वाद भोजन से मेरा आदर करती थी ।

वासवदत्ता—अच्छा अच्छा वसन्तक ! अब इन्हें ही याद करो ।

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक ! मैं यह सब देवी वासवदत्ता से कह दूंगा ।

विदूषक—हाय वासवदत्ता ! वासवदत्ता कहाँ ? वासवदत्ता को मरे हुए बहुत दिन हुए ।

राजा—(शोकपूर्वक) ऐसा ? वासवदत्ता मर गई ।

तुमने इस परिहास से मेरा मन व्यग्र कर दिया । इसलिये पूर्वाभ्यासवश यह वाणी मेरे मुँह से निकल पड़ी ।।६।।

पद्मावती—सुन्दर कथा तथा प्रश्न क्रूर (विदूषक) ने बिगाड़ दिया ।

वासवदत्ता—[मन ही मन] बस बस, मैं विश्वस्त हूँ । अहा ! बहुत ही प्रिय है, जो ऐसा वचन परोक्ष में (पीछे) सुना जाता है ।

विदूषक—धैर्य रखिए, धैर्य रखिए आप । दैव का उल्लंघन नहीं किया जा सकता । इस समय तो यह (वियोग दुःख) ऐसे ही (चुपचाप सहना होगा) ।

मित्र आप मेरी दशा को नहीं जानते । क्योंकि —

विशेष

यहाँ महाराज उदयन की कोमल भावनाओं का उद्गार अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया गया है । बहुत समय पूर्व मृत्यु को प्राप्त हुई वासवदत्ता के प्रति आज भी उनकी भावनाएँ उतनी ही सजीव हैं जैसे पहले थीं ।।६।।

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः,
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं,
प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥७॥

विदूषकः—अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्रभवतो मुखम् । यावन्मुखोदकमानयामि । [अस्सुपादाकलिण्णं खु तत्तदोहो मुहं । जाव मुहोदअं आणेमि ।]

पद्मावती—आर्ये ! वाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्यमुखम् । यावन्निष्क्रामामः । [अय्ये ! बप्फाउलपडन्तरिद अय्यउत्तस्स मुहं । जाव णिक्किह्म ।]

वासवदत्ता—एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि । [एव्वं होदु । अहव चिट्ठ तुवं । उक्कण्ठिदं उत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमेणं अहं एव्व गमिस्सं ।]

चेटी—सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।
[सट्ठुअय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ ।]

पद्मावती—किन्नु खलु प्रविशामि ? [किं णु खु पविसामि ?]

वासवदत्ता—हला ! प्रविश ! [हला पविस ।]

विदूषकः—एषा तत्रभवती पद्मावती ? [नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा । एसा तत्तहोदी पदुमावदी ?]

पद्मावती— आर्य ! वसन्तक ! किमेतत् ? [अय्य ! वसन्तअ ! किं एदं ?]

विदूषकः—एदमिदम् । इतमेतत् । [एदं इदं । ईदं एदं ।]

पद्मावती—भणतु भणत्वार्यो भणतु । [भणादु भणादु अय्यो ! भणादु ।]

विदूषकः—भवति वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्रभवतो मुखम् । तद गृह्णातु भवतीद मुखोदकम् [भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेण सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं ता गह्णदु होदी इदं मुहोदअं ।]

अन्वयः—बद्धमूलः अनुरागः त्युक्तं दुःखम्, स्मृत्वा-दुःखं नवत्वं याति । तु यात्रा एषा, यत् इह वाष्पं विमुच्य प्राप्तानृण्या बुद्धिः प्रसादं याति ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या

बद्धमूलः—बद्धं मूलं यस्य स बद्धमूलः दृढ इत्यर्थः अनुरागः प्रेम त्युक्तं दुःखं अतिकठिनम् स्मृत्वा—स्मृत्वा भूयो भूयस्तत्प्रेम संस्मृत्य, दुःखं कष्टं नवत्वं नवीनतां याति प्राप्नोति । तु तथापि यात्रा लोकरीतिः—एवा यत् इह अस्मिन् लोके वाष्पं अश्रुजलं विमुच्य प्राप्तानृण्या—प्राप्तं लब्धं आनृण्यं ऋणस्य अभावः—तत्प्रेम्णो निष्कृतिर्यया सा बुद्धिः—मनः प्रसादं प्रसन्नतां याति गच्छति—वियोगे शोके वा रोदनं कृत्वा मनः शान्तिमाप्नोतीति भावः ॥७॥

मित्र ! आप मेरी दशा को नहीं जानते। क्योंकि—"जमी हुई जड़ वाले प्रेम को छोड़ना बड़ा कठिन है। बार-बार उनकी याद करने से दुःख नया सा हो जाता है तो भी लोकरीति यही है कि यहाँ इस लोक में आँसू बहाकर ऋणमुक्त हुई बुद्धि प्रसन्नता (शान्ति) को प्राप्त कर लेती है ।।७।।

विदूषक--आपका मुख आँसुओं के गिरने से मलिन हो गया है। तो मुख धोने के लिये पानी ले आऊँ।

(चला जाता है)

पद्मावती—आर्ये ! आर्यपुत्र का मुँह अश्रुपूर्ण होने से वस्त्र द्वारा ढका हुआ सा प्रतीत हो रहा है। तो यहाँ से निकल चलें।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही। अथवा तुम यहीं ठहरो। उत्कण्ठित हुये स्वामी को छोड़कर जाना उचित नहीं। मैं ही जाऊँगी।

दासी—आर्या ठीक कहती हैं। राजकुमारी जी (स्वामी के पास) जाएँ।

पद्मावती—तो मैं जाऊँ।

वासवदत्ता—सखि जाओ।

(यह कहकर निकल गई)

विदूषक—(कमल के पत्ते में पानी लेकर) ये पूजनीया पद्मावती हैं।

पद्मावती—आर्य वसन्तक यह क्या ?

विदूषक—ये तो ये हैं। यह है ये।

पद्मावती—कहिए, कहिए, आर्य कहिए।

विदूषक—देवि ! वायु से उड़ाई गई कांस के फूल की धूलि के आँख में पड़ने से राजा के आँसू ढलक आए हैं। तो लीजिए आप इस मुँह धोने के जल को।

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। जयत्वार्यपुत्रः। इदं मुखोदकम्। [अहो सदक्खिणस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिण्णो एव्व होदि। (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो। इदं मुहोदअं।]

राजा—अये! पद्मावती? (अपवार्य) वसन्तक! किमिदम्?

विदूषकः—(कर्णे) एवमिव [एव्वं विअ।]

राजा—साधु वसन्तक! साधु। [आचम्य] पद्मावती आस्यताम्।

पद्मावती—उपविशति यदार्यपुत्र आज्ञापयति। [जं अय्यउत्तो आणवेदि।]

राजा—पद्मावती?

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि!।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम्॥८॥

[आत्मगतम्]

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः॥९॥

विदूषकः—उचितं तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्णकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम्। सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान्। [उइदं तत्तहोदो मअधराअस्स अवरह्णकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं। सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छदो पीदिं उप्पावेदि। ता उट्ठदु दाव भवं।]

अन्वयः—भामिनि! शरच्छाशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साश्रुपातम्॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

भामिनि सुन्दरि! शरदशशाङ्कगौरेण शरच्चन्द्रधवलेन वाताविद्धेन वायुना वेल्लितेन काशपुष्पलवेन तन्नामप्रसूनकणेन धूलिरूपेण नयनयोरन्तरं गते नेति शेषः, इदं मम मुखमाननं साश्रुपातमश्रुपातेन सहितं रोदनजलोद्गमेन युक्तं संजातमित्याशयः॥८॥

अन्वयः—बाला नवोद्वाहा (च) इयं (पद्मावती)—सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्। इयं कामं धीरस्वभावा, तु स्त्रीस्वभावः कातरः॥९॥

बाला नूतनवया मुग्धेति यावत् नवोद्वाहा नव विवाहिता च इयं पद्मावती सत्यं श्रुत्वा रोदनस्य वास्तवं कारणं निशम्य व्यथा व्रजेत् व्यथिता भवेदिति भावः। इयमेषा पद्मावती कामं अत्यन्तं धीरस्वभावाधीरो गम्भीरः स्वभावः प्रकृतिर्यस्यास्तादृशी वर्तते तु किन्तु स्त्रीस्वभावः स्त्रीणां स्वभावः कातरः—अधीरः भवति॥९॥

पद्मावती—(मन ही मन) अहा ! उदार लोगों के सेवक भी उदार ही होते हैं। (पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह मुँह धोने के लिये जल है।

राजा—अरे ! पद्मावती (मुँह फेरकर हाथ की ओट में) वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—(कान में) ऐसा है।

राजा—अच्छा वसन्तक ! अच्छा ! (मुँह धोकर) पद्मावती ! बैठो।

पद्मावती– जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा।

(बैठ जाती है)

सुन्दरि ! हवा में उड़ाये गये तथा शरद्कालीन चन्द्रमा की भाँति धवलकाश-पुष्प के धूलि-कणों से मेरा मुख अश्रुपात से युक्त है ॥८॥

(मन ही मन)

सद्य विवाहिता यह बाला (पद्मावती) सत्य को सुनकर पीड़ा को प्राप्त होगी (दु:खित होगी) भले ही यह धैर्यशालिनी है, परन्तु स्त्रीस्वभाव तो भीरू (अधीर) होता है ॥९॥

विदूषक—पूजनीय मगधराज का अपराह्न समय में आपको आगे करके (आपके साथ) मित्र लोगों से मिलना उचित है। निश्चय से, सत्कारपूर्वक स्वीकृत सत्कार ही प्रेम को उत्पन्न करता है। तो अब आप उठें।

विशेष

पद्य ९--(१) सत्यं श्रुत्वा—रोने का वास्तविक कारण सुनकर। उदयन अश्रुपात के वास्तविक कारण को छिपाने के औचित्य के विषय में मन ही मन सोचता है यदि मैं सच कह देता कि मैं वासवदत्ता के वियोग में आँसू बहा रहा हूँ तो यह सुनकर पद्मावती बहुत ही व्यथित होती।

(२) स्त्रीस्वभावस्तु कातरः—उदयन पद्मावती के धैर्य के विषय में जानता है साथ ही दर्शक भी पद्मावती की धैर्यशीलता से परिचित हैं। यद्यपि पद्मावती को वास्तविकता का पता है तथापि वह उद्विग्न नहीं हुई है। परन्तु फिर भी वह है तो स्त्री ही। और स्त्रिया प्राय: स्वभाव से ही भीरू होती है। वह तनिक सी बात से घबरा उठती है। उदयन ने यहाँ पद्मावती के इसी स्त्री प्रसिद्ध स्वभाव का उल्लेख किया है। महान् कवि भवभूति ने भी स्त्रियों के चित्त की कोमलता व अधीरता का चित्रण किया है—

"पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।"

(३) प्रस्तुत पद्य में 'बाला' एवं 'नवोद्वाहा' दोनों विशेषणों के साभिप्राय होने के कारण 'परिकर' अलङ्कार है। लक्षण—

"उक्तैर्विशेषणै: साभिप्रायै: परिकरो मत:"—साहित्यदर्पण १०–५७-

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

(उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥१०॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

चतुर्थोऽङ्कः

अन्वयः—विशालां गुणानां सत्काराणां च कर्तारो लोके नित्यशः सुल
विज्ञातारस्तु दुर्लभाः (सन्ति) ॥१०॥

विशालानां महतामुदाराणां गुणानां परोपकारादिसत्कर्मणां सत्काराणां प भाजनकार्याणां च कर्तारः प्रयोजकाः लोके जगति नित्यशः सन्ततं सुलभाः सुखेन ल शक्याः, बहुलमुपलभ्यन्ते इत्यर्थः, विज्ञातारस्तु सादरं तत्स्वीकर्तारः पुनः दुर्लभः दु लब्धुं शक्याः, विरलास्तादृशः सन्तीत्याशयः । मित्यमुपकर्तारः सत्कर्तारश्च लोके ब दृश्यन्ते किन्तु परगुणग्राहिणः परस्कृतसत्कारज्ञाश्च विरला एव सन्तीत्याशयः ॥१०

राजा—ठीक—उचित (मुख्य) बात है।

(उठकर)

महान् गुणों एवं सत्कारों के करने वाले लोग तो संसार में सदा सुलभ हैं, पर उनके जानने वाले दुर्लभ हैं ॥१०॥

(सब निकल गये)

चौथा अङ्क समाप्त

विशेष

पद्य १०—(१) प्रथमः कल्पः—प्रमुख अर्थात् अच्छा,—औचित्यपूर्ण प्रस्ताव अथवा संकल्प। अमरकोष—"मुख्यः स्यात्प्रथमः कल्पः"।

(२)—प्रस्तुत पद्य में "कर्तारः" तथा "विज्ञातारः" इन दोनों का सम्बन्ध "गुणानाम्" तथा "सत्काराणाम्" इन दोनों षष्ठ्यन्त पदों से है।

पद्य १०—विज्ञातारस्तु दुर्लभाः—दया, उदारता आदि अच्छे कामों को करने वाले, तथा दूसरों का सत्कार करने वाले तो संसार में बहुत मिल जाते हैं परन्तु उनके समझने वाले अर्थात् उनके पारखी बहुत कम मिलते हैं। प्रस्तुत पद्य में कवि ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है अतः वह सत्कर्ता है और उदयन गुणग्राही व सत्कारज्ञ है—इसीलिये वह सत्कार के प्रत्युत्तर में दर्शक का सत्कार करने के लिये उसके समीप जा रहा है।

यहाँ सत्कार का प्रसंग प्रस्तुत है और उसके साथ ही—अप्रस्तुत गुणों के विषय में भी कह दिया गया है अतः—दीपकालङ्कार है। लक्षण—

"अप्रस्तुत-प्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते"।

अथ पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशति पद्मिनिका]

पद्मिनिका—मधुरिके ! मधुरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् । [महुअरिए ! महुअरिए ! आगच्छ दाव सिग्घं ।]

[प्रविश्य]

मधुरिका—हला ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ? [हला ! इअं [illegible] करीअदु ?]

पद्मिनिका—हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति । [हला ! किं ण जानासि तुवं [illegible] पदुमावदी सीर्षवेदणाए दुक्खाविदेत्ति ।]

मधुरिका—हा धिक् । [हद्धि]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दायस्व । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति । [हला ! गच्छ सिग्घं, अय्यं अवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भ[illegible]दारिआए सीसवेदणं एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि ।]

मधुरिका—हला ! किं सा करिष्यति ? [हला ! किं सा करिस्सदि ?]

पद्मिनिका—सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति । [सा खु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवे[illegible] विणोदेदि ।]

मधुरिका—युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ? [जुज्जई । कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ?]

पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वं । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि । [समुद्दगिहके, किल सेज्जा त्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं । अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअं अण्णेसामि ।]

मधुरिका—एवं भवतु । [एव्वं होदु]

(निष्क्रान्तः)

पद्मिनिका—कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि । [कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः—अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । अयि ! पद्मिनिका ! पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ? [अज्ज हु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदी पाणिग्गहण समीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोससवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वड्ढइ । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! कि इह वत्तादि ?]

पद्मिनिका—आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति । अय्य वसन्तअ ? किं ण जाणासि तुवं—भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति ।]

पाँचवाँ अङ्क

(उसके पश्चात् पद्मिनिका प्रवेश करती हैं)

पद्मिनिका—मधुरिका ! मधुरिका ! शीघ्र आओ।

(प्रवेश करके)

मधुरिका—अरी ! यह मैं हूँ। क्या किया जाय ?

पद्मिनिका—अरी ! क्या तू नहीं जानती कि सिर की वेदना ने राजकुमारी को दुःखी बना दिया है।

मधुरिका—हाय ! कष्ट !!

पद्मिनिका—अरी जल्दी जा और उज्जयिनी वाली आर्या को बुला ला। केवल राजकुमारी का सिर दर्द बताना, ऐसा जानकर वे स्वयं ही आवेंगी।

मधुरिका—अरी वे क्या करेंगी ?

पद्मिनिका—इस समय वे मधुर कथाओं के द्वारा राजकुमारी के सिर की वेदना को हल्का करेंगी।

मधुरिका—ठीक है, राजकुमारी की सेज कहाँ है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह नामक कमरे में सेज बिछाई गई है। तू इस समय जा। मैं भी स्वामी (वत्सराज) को निवेदन करने के लिये आर्य वसन्तक की खोज करती हूँ।

मधुरिका—ठीक है।

(चली गयी)

पद्मिनिका—अब आर्यवसन्तक की खोज कहाँ करूँ ?

(तत्पश्चात् विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक—आज निश्चय ही वासवदत्ता के विरह से विकल हृदय तथा पद्मावती के साथ विवाह करने के लिए उत्सुक श्रीमान् वत्सराज के मदनकाल का ताप सुख प्रदान करने वाले इस उत्सव में बहुत अधिक उद्दीप्त हो रहा है।

[पद्मिनिका को देखकर]

अरे ! यह पद्मिनिका, पद्मिनिका, ! यहाँ क्या होने जा रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक। राजकुमारी सिर की वेदना से पीड़ित हो रही है—यह क्या तुम्हें विदित नहीं है ?

विदूषकः—भवति ! सत्यं ? न जानामि । [भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि ।]

पद्मिनिका—तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि । [तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सीसाणुलवणं तुवारेमि ।]

विदूषकः—कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्या ? [कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ?]

पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । [समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा ।

विदूषकः—गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि। [गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं ।]

[निष्क्रान्तौ ।]

[प्रवेशकः ।]

[ततः प्रविशति राजा ।]

राजा—श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हितहतामिव चिन्तयामि ॥१॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् । [तुवरदु तुवरदु दाव भवं ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—तत्र भवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता । [तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा ।]

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः—पद्मिनिकया कथितम् । [पदुमिणिआए कहिदं ।]

राजा—भोः ! कष्टम् ।

अन्वयः—कालक्रमेण पुनरागदारतभारः लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं श्लाघ्यां अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनुजां तां हिमहतां पद्मिनीं इव चिन्तयामि । इत्यन्वयः।

संस्कृत-व्याख्या

श्लाघ्यामिति । कालक्रमेण समयचक्रेण वासवदत्ताविनाश कालात् कतिपयकालातिक्रमानन्तरं वा, पुनरागतदारभारः, पुनर्भूय आगत उपस्थितदारस्य भारः दारभारः पद्मावतीपरिग्रहरूपा धूयत्र सोऽहं लावाणके तन्नाम्नि ग्रामे हुतवहेनाऽग्निना, हृताङ्गयष्टिं हृता दग्धा अङ्गयष्टिस्तनुलता यस्यास्तादृशीम्, श्लाघ्यां गुणगौरवात् प्रशंसनीयाम्, अवन्तिनृपतेः अवन्तिदेशाधीश्वरस्य प्रद्योतनाम्ना राज्ञः सदृशीमनुरूपां, तनुजां कुमारीं, तां अनुभूतपूर्वां वासवदत्तामिति यावत् हिमहतां, हिमेन पतितेन तुषारेण, हतां विदलितां नाशितां पद्मिनीं कमलिनीमिव चिन्तयामि ध्यायामि स्मरामीत्यर्थः ॥१॥

विदूषक—अजी ! सच ? मुझे नहीं मालूम ।

पद्मिनिका—अब तो तुम स्वामी से यह कह देना । मैं भी तब तक सिर की वेदना को दूर करने वाले लेप की जल्दी करती हूँ ।

विदूषक—पद्मावती की सेज कहाँ रची गयी है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह नाम के कमरे में सेज बिछी है ।

विदूषक—तुम जाओ । मैं महाराज से निवेदन कर दूँगा ।

(दोनों चले गये)

(प्रवेशक समाप्त ।)

(तदनन्तर राजा प्रवेश करता है ।)

राजा—समय के महात्म्य से फिर भी जिस पर पद्मावती स्त्री परिग्रह रूपी भार आ पड़ा ऐसा मैं सर्वथा प्रशंसा योग्य अपने अनुकूल, लावाणक नामक गाँव में जो आग से जली, अतः तुषार से मारी हुई कमलिनी की भाँति अवन्तिराजा महासेन की पुत्री वासवदत्ता की याद करता हूँ ।

(प्रवेश कर)

विदूषक—आप शीघ्रता करें ।

राजा—किसलिए ?

विदूषक—माननीया पद्मावती शिरोवेदना से दुःखी हुई है ।

राजा—किसने ऐसा कहा ?

विदूषक—पद्मिनिका ने कहा ।

राजा—हाय ! दुःख—

विशेष

पद्य १ (क) पुनरागत भारः—पुनः पत्नी के भार को स्वीकार कर लेने वाला दाराणां भारः दारभारः, पुनः आगतः पुनरागतः, पुनरागतः दारभारः यस्य सः बहुव्रीहि समास ।

(ख) हुताङ्गयष्टिम्—जिसकी शरीर रूपी लता जल गई है । अङ्ग यष्टिरिव इति अङ्ग यष्टिः हुता अङ्गयष्टिः यस्याः सा बहुव्रीहि समास ।

(ग) तनूजाम्—पुत्री को । तन्वाः जायते इते तनुजा ताम् । तनू + जन् + ड —टाप् ।

(घ) इस पद्य में कवि ने उदयन का चरित्र बड़ी ही मनोहारिता के साथ विचित्र किया है । पता चलता है कि नायक वासवदत्ता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम (रतिभाव) रखता है । वास्तव में उदयन का चरित्र एक धीरललित नायक का चरित्र है । उस का चरित्र उदात्त है । यही नहीं आगे चलकर वासवदत्ता भी पद्मावती को कितना स्नेह करती है इस बात का पता चलता है ।

इसमें उपमा और विशेषोक्ति अलङ्कार हैं तथा वसन्ततिलका छन्द है ।।१।।

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । [समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा ।]

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय ।

विदूषकः—एत्वेतु भवान् । [एदु एदु भवं ।]

(उभौ परिक्रामतः)

विदूषकः—इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशतु भवान् [इदं समुद्दगिहकं । पविसदु भवं ।]

राजा—पूर्वं प्रविश ।

विदूषकः—भोः ! तथा ! अविहा ? तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् । [भो ! तह । (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः, अयं काकोदरः । [एसो खु दीप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो, अअं काओअरो ।]

राजा—(प्रविश्यावलोक्य) सस्मितम् अहो ! सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य ।

अन्वयः—अद्य रूपश्रिया समुदितां च गुणतः युक्तां, प्रियां लब्ध्वा मम शोकः तु मन्द इव सञ्जात इति । अपि अनुभूत दुःखः सोऽहं पद्मावतीं अपि तथैव पूर्वाभिघातसरुजः समर्थयामि ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—रूपश्रियेति । अद्य इदानीं वर्तमाने काले, रूपश्रिया स्वरूपकान्त्या शोभया वा, समुदितां समेतां, च पुनः, गुणतो गुणैः युक्तां समितां, अतएव प्रियां प्रीतिभाजं पद्मावतीमिति यावत्, लब्ध्वा प्राप्य मम वासवदत्ता वियुक्तस्य मे, शोकः विषादस्तु, मन्द इव किञ्चिन्न्यून इव, सञ्जात इति । पूर्वाभिघातसरुजः पूर्वः प्राथमिक चासावभिघातः वासवदत्ता विनाश रूप वज्रपातः तेन कारणेन सरुजो रुजया पीडया सह वर्तमानो दुःखीति यावत् । अपि पुनः, अनुभूतदुःखः, अनुभूतं भुक्तं दुःखं कष्टं येन सोऽहं, पद्मावती नवोढामिमामपि, तथैव दुःखानुभवकारिणीं दुःखिताम्, अथवा विनाशं गतां वासवदत्तामिव विनाशं गमिष्यन्तीं, समर्थयामि सम्भावने ।

गुणत इत्यत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः ।

आपं चैव हलन्तानाम् इति भागुरी मतेनाभावन्तो रुजा शब्दः ॥२॥

रूप सम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्रिया को पाकर आज मेरा शोक मन्द सा हो गया था, कि प्रथम आघात से पीड़ित और दुःख का अनुभव करने वाला मैं पद्मावती को भी इसी तरह पीड़ित समझ रहा हूँ ।

अच्छा पद्मावती किस स्थान पर है ?

विदूषक—समुद्रगृह में बिछी है ।

राजा—पहले उसका मार्ग बताओ ।

विदूषक—आइए आप आइए ।

(दोनों घूमते हैं)

विदूषक—वह समुद्रगृह है । आप प्रवेश करें ।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो ।

विदूषक—जी, अच्छा । (प्रवेश कर) ठहरिये, जरा आप ठहरिये ।

राजा—किस लिये ?

विदूषक—दीपक के प्रकाश से स्पष्ट दिखाई पड़ने वाला जमीन पर लोट-पोट करता हुआ यह साँप है ।

राजा—(प्रवेश कर और देखकर मुस्कराते हुये) अहो ! क्या ही मूर्ख का सर्प विषयक ज्ञान है ।

विशेष

पद्य २—(क) समुदिताम्—समन्वित, युक्त । सम—उद्√इ + क्त टाप् ।

(ख) गुणतः—गुणों से शब्द से तस् प्रत्यय ।

(ग) पूर्वाभिघातसरुजः—प्राथमिक आघात से पीड़ित । √रुज् + क्विप्—रुज्-रोग, पीड़ा, रुजा सह वर्तमानः सरुक्, पूर्वश्चासौ अभिघातः पूर्वाभिघातः तेन सरुक् इति पूर्वाभिघातसरुक्, तेन ।

(यहाँ राजा वासवदत्ता को कितना प्यार करता है, इसका पता चलता है उसे यह सन्देह है कि कहीं पद्मावती भी नष्ट न हो जाय । इसकी पुष्टि 'अति स्नेहः पापशङ्की' इस तथ्य से स्पष्टतया हो जाती है ।)

(घ) समर्थयामि—सोचता हूँ । सम् + अर्थ + णिच् + लट्—मिप् ।

(ङ) इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है और वसन्ततिलका छन्द है ॥२॥

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दामिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

विदूषकः---(निरूप्य) सुष्ठु भवान् भणति । न खल्वयं काकोदरः । तत्र-भवति पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् । [सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो । (प्रविश्याविलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे ।]

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

विदूषकः---कथं भवान् जानाति ? [कहं भवं जाणादि ?]

राजा---किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

शयय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

अन्वय—मूर्ख ! ऋज्वायतां क्षितौ भ्रष्टां मुखतोरणलोलमालाम् त्वं सर्पं अवगच्छासि । या माला निशि मन्दानिलेन किञ्चित् परिवर्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि करोति ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—ऋज्वायतामिति । अयि । मूर्ख ! अयथार्थ ज्ञानिन् । ऋज्वायताम्, ऋजुः सरला आयता दीर्घा च तामिति विशेषणोभयपदः कर्मधारयः, क्षितौ भूमौ, भ्रष्टां पतितां, मुखतोरणलोलमालाम्, मुखं प्रधानं यत्तोरणं गृहस्य बहिर्द्वारं, 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः तत्र या लोला चञ्चला' माला पुष्प स्रक् तां, त्वं सर्पमवगच्छसि सर्पोऽयमिति मन्यसे । या माला, निशि रात्रौ, मन्दानिलेन मन्दं वहता पवनेन, किञ्चित् परिवर्तमाना परितः स्पन्दमाना, भुजगस्य सर्पस्य विचेष्टितानि सर्पसदृशी श्चलनपलनादिकाः क्रियाः, करोति वितनोति । अर्थात् अयि । मूर्ख पवनेन कम्पमानायां तत्र ते सर्पभ्रमो जायते, सोऽपि सम्यग् प्रकाशरहिते नैशे किल समयेऽस्मिन्नापाततो युज्यते । वस्तुतो नायं सर्पः किन्तर्हि मालेयमिति भावः वसन्ततिलकं नामेदं छन्दः ॥३॥

अन्वयः—हि शय्या न अनवता तथा आस्तृस्तसमा, अथ व्याकुलप्रच्छदा न वर्तते, अमल शिरोपधानं शीर्षाभिघातौषधैः क्लिष्टं न । रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता । रुजा प्राणी शयनं प्राप्य पुनः शीघ्रं स्वयं न मुञ्चतीत्यन्वयः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—शय्येति । हि—यतः शय्या शयनीयं न अवनता-शरीर 'भारेण' किञ्चिदपि अवनतिं न लब्धा, तथा एवम् अस्तृतसमा आस्तृता कुथाद्या-स्तरेण युक्ता सा चैशा समा मनागपि विषमतां नाभि गतेति यावत्, व्याकुलप्रच्छदा —नव्याकुलः इतस्ततः सङ्कुचितः प्रच्छदः निचोलपटः यस्याः सा तथाभूता न

अरे मूर्ख तुम सीधी, लम्बी, पृथ्वी पर गिरी हुई और सदर द्वार पर लटकने वाली माला को साँप समझ रहे हो, जोकि रात्रि में मन्द-मन्द पवन से कम्पित हो कुछ साँप की-सी चेष्टायें करती हैं ॥३॥

विदूषक—(अच्छी तरह देखकर) आप ठीक कहते हैं। यह साँप नहीं है।

(प्रवेशकर तथा देखकर)

माननीया पद्मावती यहाँ आकर निकल गई होगी।

राजा—मित्र ! अभी आयी न होगी।

विदूषक—यह आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें जानना क्या है ? देखो—

शय्या (सेज) ज्यों का त्यों लगी हुई है. कुछ भी दबी नहीं, न उस पर की चादर ही सिकुड़ी है, शिरोवेदना की दवाइयों से सिरहाने की तकिया, जो बिल्कुल स्वच्छ एवं साफ थी कुछ भी मैली नहीं हुई है। यहाँ पर रोग की दशा में आँखों को लुब्ध करने के लिए किसी तरह की सजावट भी नहीं की गयी है। और इसके साथ ही एक बात यह भी है कि आदमी रोग से बिछौने पर आकर फिर शीघ्र ही उसे स्वयं नहीं छोड़ता ॥४॥

अमलं-निर्मलं, शिरोपधानं = उपवर्हणम् शीर्षाभिघातौषधैः शिरोवेदनानिग्रहसमर्थैं औषधिविशेषैः न क्लिष्टं न दुषितं रोगे-व्याधौ सति दृष्टिविलोभनम् दृष्टेराकर्षणम् जनयितुं-उत्पादयितुं काचित् कापि-शोभा-सौन्दर्य न कृता, न विहिता। पुनः भूयः, प्राणी = शरीरधारी, रुजा = रोगेण, शयनं = शय्यां, प्राप्य = लब्ध्वा, शीघ्रम् = आशु, त्वरितं वा स्वयं = स्वतः, न मुञ्चति = न त्यजति ॥४॥

विशेष

पद्य ३—यहाँ राजा विदूषक की मूर्खता पर दृष्टि विक्षेप कर रहा है क्यों उसे पुष्प की माला भी सर्प प्रतीत हो रही है। यही है विदूषक की मूर्खता तथा उसके हास-परिहास एवं मनोविनोद का ढंग। इस श्लोक में भ्रान्तापह्नुति अलंकार है तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥३॥

पद्य ४—इस पद्य में पूर्वोक्त हेतुओं में पद्मावती के अनागमन रूप साध्य की सिद्धि होने के कारण अनुमान अलंकार है। किसी प्रकार के अन्य साधनों को न देखकर यह निश्चित हो पाता है कि पद्मावती शिरोवेदना के कारण जहाँ पर थी वहीं विश्राम कर रही है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥४॥

विदूषकः—तेन हि ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवती प्रतिपालयतु भवान्। [तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदिं वडिवालेदु भवं।]

राजा—वाढम्। (उपविश्य) वयस्य! निद्रां मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

विदूषकः—अहं कथयिष्यामि। हों इति करोत्वत्र भवान्। [अहं कहइस्सं। हों त्ति करेदु अत्तभवं।]

राजा—बाढम्।

विदूषकः—अस्ति नगर्युज्जयिनो नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल। [अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तहिं अहिअरमण आणि उदअह्लाणणि वत्तन्ति किल।]

राजा—कथमुज्जयिनी नाम।

विदूषकः—यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।

राजा—वयस्य! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अपि च—

वहुशोऽप्युपदेशेषु यथा मामीक्षमाणया।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

अन्वयः—प्रस्थानकाले स्वजनं स्नेहात् स्मरन्त्याः प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं वाष्पं ममैव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—स्मरामीति। प्रस्थानकाले प्रयाण समये, स्वजनं=बन्धुवर्गं, स्मरन्त्याः=ध्यायन्त्याः, स्नेहात्=प्रेम्णा, प्रवृत्तम्=स्वतः उद्गतं, नयनान्तलग्नम्=अपाङ्गयोः सङ्गतं वाष्पं=अश्रु, ममैव=मदीय एव, उरसि=वक्षःस्थले, पातयन्त्याः=मुञ्चन्त्याः, अवन्त्याधिपतेः=अवन्तिराजस्य, सतायाः=पुत्र्याः, स्मरामि=चिन्तयामि ॥५॥

अन्वय—उपदेशेषु माम् ईक्षमाणया यया स्रतकोणेन हस्तेन बहुशः अपि आकाशवादितं कृतम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—बहुशोऽपीति। उपदेशेषु=शिक्षासु, माम्=उदयनम् ईक्षमाणया=मदभिमुखं कुर्वत्या, यया=वासवदत्तया, स्रस्तकोणेन=स्रस्तः च्युतः कोणः वीणावादनं वस्तुविशेषो यस्मात् स तथाविधः तेन, हस्तेन=करेण, बहुशः अपि=अनेकवारमपि, आकाशवादितं=आकाशं शून्ये वादितं=लयतालादि शून्यवादनं, कृतं विहितम् ॥६॥

विदूषक—तो इस सेज पर घड़ीभर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा—ठीक। (बैठकर) मित्र। नींद मुझे सताती है। कोई कथा कहो।

विदूषक—मैं कहूँगा। आप हुँकारी भरते जाइए।

राजा—अच्छा।

विदूषक—उज्जयिनी नामक एक नगरी है। वहाँ पर अत्यन्त रमणीय स्नान करने योग्य जलाशय है।

राजा—क्या उज्जयिनी ?

विदूषक—यदि यह कहानी न रुचती हो तो दूसरी कहूँ।

राजा—मित्र ! ऐसी बात नहीं कि यह कथा मुझे अच्छी नहीं लगती। किन्तु—

उज्जयिनी से चलने के समय अपने आत्मीय जनों का स्मरण करती हुई और स्नेह के कारण निकले हुए एवं आँखों के कोने में रुके हुए आँसुओं को मेरी छाती पर गिरती हुई अवन्तिकुमारी वासवदत्ता की याद कर रहा हूँ ॥५॥

और भी—

(वीणा) सिखाते समय मेरी ओर एकटक देखती हुई जिसने छूटे हुये वीणा बजाने वाले हाथ से बिना ताल लय के या अनेक बार शून्य स्थान में बजाने की क्रिया की थी (उसी प्रिया का स्मरण कर रहा हूँ) ॥६॥

विशेष

पद्य ५—यहाँ राजा उदयन वासवदत्ता के अगाध प्रेम का ध्यान करते हुये चित्रित किये गये हैं। उस वासवदत्ता के नेत्रों से अश्रुधारा के प्रवाहित होने से राजा का वक्षःस्थल आर्द्र एवं क्लिन्न- सा हो गया है। वास्तव में कितना मार्मिक दृश्य है। यह केवल मात्र कल्पना की गहराई पर ही आँकने की वस्तु है।

इस श्लोक के प्रथम चरण में उपेन्द्रवज्रा, शेष तीनों चरणों में इन्द्रवज्रा के होने से उपजाति है ॥५॥

पद्य ६—(क) ईक्षमाणया—देखती हुई। √ईक्ष् + लट्—शानच्, मुगागम।

(ख) स्रस्तकोणेन—जिससे णिजराब (तार का बना छल्ला) गिर चुका हो। स्रस्तः कोणो यस्मात् सः, तेन। कोण—तानपूरा इसको 'सारिका' भी कहते हैं।

(ग) उपदेशेषु—शिक्षा देते समय। यहाँ उप√दिश् में उपदेश और अधिकरण में सप्तमी हुई है।

यहाँ अनुष्टुप् छन्द है ॥६॥

विदूषकः—भवतु, अन्यां कथयिष्यामि । अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम । तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम । [भोदु अण्णं कहइस्सं । अत्थि णअरं ब्रह्मदत्तं णाम। तहिं किल राजा कंपिल्लो णाम् ।]

राजा—किमिति किमिति ।

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति) ।

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम् ।

विदूषकः—किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ? [किं राआ ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ?]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान् यावदोष्ठगतं करिष्यामि। राजा ब्रह्मदत्तः नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्र भवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वा गमिष्यामि । [तेण हि मुहुत्तअ पडिवालेदु भवं जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राआ ब्रह्मदत्त णअरं कपिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणिं सुणादु भवं अयि सुत्तो अत्तभव ? आद सीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं अ गह्णिअ आआमिस्सं ।] (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकान्वेषेण चेटी च ।)

चेटी—एत्वेत्वार्या दृढं खलु भर्तृदारिका शीषवेदनया दुःखिताः । [एदु एदु अय्या ! दिढं खु भट्टिदारिआ सीस वेदणाए दुःखाविदा ।]

वासवदत्ता—हा धिक् कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्या ? [हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ?]

चेटी—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । [समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा।]

चेटी—तेन हि ह्यग्रतो याहि । [तेण हि अग्गदो याहि ।]

(उभे परिक्रामतः ।)

चेटी—इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि । [इदं समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि ।] (निष्क्रान्ता ।)

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वथा जाता । यावत् प्रविशामि अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्थां पद्मावतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति । इयं पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि । किन्नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्ट्या विच्छिन्नसुखनिःश्वासाः । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।

[अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे । विरह पय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूद इअं वि णाम । पदुमावदी अस्सत्था जादा । जाव पविसामि (प्रविश्यावलोक्य

विदूषक—अच्छा दूसरी कथा कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नामक नगर है। वहाँ का राजा काम्पिल्य है।

राजा—क्या, क्या ?

विदूषक—(फिर वही कहता है।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य हो ?

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

राजा—हाँ ऐसा ही है।

विदूषक—तो आप जरा देर ठहरें, अब तक मैं याद कर लूं। राजा ब्रह्मदत्त नगर काम्पिल्य। (इसी को कई बार कहकर) अब आप सुनिये, अरे ! आप सो गये। इस समय बड़ी सर्दी है, अपना ओढ़ना लेकर आता हूँ।

(चला जाता है)

(अवन्तिका के वेश में वासवदत्ता आती है, साथ ही दासी भी)

चेटी—आर्या ! आइए, आइए। राजकुमारी शिरोवेदना से बहुत दुःखी हैं।

वासवदत्ता—हाय ! कष्ट। पद्मावती का बिस्तर कहाँ लगा है ?

चेटी—समुद्रगृह में सेज बिछायी गयी है।

वासवदत्ता—तो तुम आगे-आगे चलो।

(दोनों घूमती हैं)

चेटी—यह समुद्रगृह है। आर्या प्रवेश करें। तब तक मैं भी सिर के लेप के लिये जल्दी करती हूँ।

(चली जाती है)

वासवदत्ता—हाय ! सचमुच विधाता मेरे प्रति निर्दय है। मेरे विरह से व्याकुल आर्यपुत्र के मनोविनोद का एकमात्र साधन पद्मावती भी अस्वस्थ हो गयी। अच्छा भीतर चलती हूँ। (प्रवेश कर और देखकर) हाय ! दासियों की असावधानता ! जिन्होंने अस्वस्थ पद्मावती को दीपक के सहारे छोड़ दिया है। यह पद्मावती सोयी है। तो मैं बैठती हूँ। अथवा दूसरा आसन स्वीकार करने से स्नेह में कमी मालूम पड़ती है। इसीलिये इसी सेज पर बैठ जाती हूँ। (बैठकर) क्यों भला इसके साथ बैठते हुये आज मेरा हृदय आनन्दित सा हो रहा है। सौभाग्य से इसकी साँस बिना रुकावट के सुख से चल रही है। (अतएव) इसे निरोग होना चाहिये। अथवा शय्या के एक भाग में सोने से मानो यह कह रही है कि मेरा आलिंगन करो। तो सोती हूँ। (सोने का अभिनय करती है।)

अहो ! परिजणस्स पमादो ! अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदि ओसुत्ता । जाव उवविसामि ! अहव अञ्जासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उपविसामि । (उपविश्य) किं णु हु एपाय सह उववसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्ण सुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरो आए होदव्वं । अहव एअं देस सविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मं आलिङ्गहि त्ति । (जाव सइस्सं ।)

(शयनं नाटयति ।)

राजा—(स्वप्नायते ।) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय ।) हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती । किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्य यौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः । [हं अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठह्मि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराणस्य पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिष्फलो संवुत्तो ।]

राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता--दिष्टया स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टि हृदयं च तोषयामि । (दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोच्चि जणो जाव मुहुत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठि हिअअं च तोसेमि ।

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ,

वासवदत्ता—आलपामि भर्तः ! आलपामि । [आलवामि भट्ट ! आलवामि ।]

राजा--किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—नहि नहि, दुखिताऽस्मि । [णहि णहि, दुक्खिदह्मि ।]

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—ततः परं किं ? [तदो वरं किं?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता--(सरोषम्) आ आपेहि, इहापि विरचिका ? [आ अवेहि, इहावि विरचिआ ।]

राजा--तेन हि विरचिकार्यं भवतीं प्रसादयामि । [हस्तौ प्रसारयति]

वासवदत्ता—चिरं स्थिताऽस्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्यामुलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि । [चिरं ठिदह्मि को वि मं पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्यापलम्बिअं अय्यउत्तस्स हत्थं सअणीए अरोविअ गमिस्सं ।]

[तथा कृत्वा निष्क्रान्ता]

राजा—(स्वप्न में) हाय ! वासवदत्ता ।

वासवदत्ता—(झट उठकर) हे आर्यपुत्र, पद्मावती नहीं । क्या मैं देख ली गयी हूँ ? निःसन्देह आर्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा का महान् भार मेरे जाने से व्यर्थ हो गया ।

राजा—हाँ ? अवन्ति राजनन्दिनि !

वासवदत्ता—सौभाग्य से आर्यपुत्र सपने में बोल रहे हैं । यहाँ कोई नहीं है । अतएव क्षणभर बैठकर अपनी आँख व छाती को आनन्दित करूँ ।

राजा—हा ! प्रिये । प्रियशिष्ये । मुझे उत्तर दो ।

वासवदत्ता—उत्तर देती हूँ स्वामी ! उत्तर देती हूँ ।

राजा—क्या कुपित हो गई हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं मैं दुःखी हूँ ।

राजा– यदि रुष्ट नहीं हो तो शृङ्गार क्यों नहीं किया ?

वासवदत्ता—(मैं दुखी हूँ) इससे बढ़कर और क्या कारण हो सकता है ?

राजा—क्या विरचिका की याद कर रही हो ?

वासवदत्ता—(क्रोधपूर्वक) आह ! हटो, यहाँ भी विरचिका ?

राजा—तो विरचिका के लिये तुम्हें मनाता हूँ ।

(दोनों हाथ फैलाकर)

वासवदत्ता—देर तक ठहर गई । कोई मुझे देख लेगा । अतः जाती हूँ । या शय्या पर से लटके हुए आर्यपुत्र के हाथ को फिर पलंग पर रखकर जाऊँगी ।

(वैसा करके चली जाती है ।)

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ता ! तिष्ठ तिष्ठ । हा ! धिक् ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥७॥

[प्रविश्य]

विदूषकः—अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्र भवान् । [अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं ।]

राजा—वयस्य ! प्रयमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ! कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ! कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता]

राजा—वयस्य ! मा मेवम् ।

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥८॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न आ ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवती चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् । [अविहा । अन्सभावणीअं एव ण । आ उदह्लाण सङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे ।]

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥९॥

अन्वयः—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः । ततः अयं भूतार्थः मनोरथः (इति) व्यक्तं न जनामि ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—सम्भ्रमेण-वेगेन, निष्क्रागन्-ततः प्रदेशान्निर्गच्छेन; अहं-उदयनः, द्वारपक्षेण द्वारस्य पार्श्व भागेन, ताडितः–आहतः अभूवम् । ततः–तस्मात्–कारणात्, अयम् वासवदत्ता—समागमः, भूतार्थः—यथार्थः (वा) मनोरथः— मनोभिलाषः, (इति) व्यक्तं—स्पष्टं, न जानामि—नावगच्छामि ॥७॥

अन्वयः—सखे । शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा (सा) गता । पूर्वं दग्धा इति ब्रुवता रुमणवता (अहम्) वञ्चितः अस्मि ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—सखे—मित्र ! शय्यायाम्--शयनीये, अवसुप्तं--शयितं, मां--उदयनम्, बोधयित्वा--जागरयित्वा (सा वासवदत्ता) गता प्रयाता । पूर्वम्—पुरा, दग्धा-वासवदत्ता भस्मीभूता, इति—इत्यर्थं, ब्रुबता—कथयता, रुमण्वता--एतन्नामकेन विश्वासपात्रेण—मन्त्रिणा, (अहम्) वञ्चितः—प्रतारितः, अस्मि—जातः ॥८॥

अन्वयः—यदि तावत् अयम् स्वप्नः, अप्रतिबोधनं धन्यं । अयं विभ्रमो वा स्यात्, मे विभ्रमो हि चिरं अस्तु ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—यदि—चेत्, तावत्—वाक्यालङ्कारार्थमिदं, अयं—एषः वासवदत्ता दर्शन रूपो विषय इत्यर्थ स्वप्नः—स्वप्नरूपो वर्तते (तर्हि) अप्रतिबोधनम्—अजागरणं, धन्यं प्रशस्तं समीचीनं मन्ये इति शेषः । अथ—पक्षान्तरे अयं—एषः वासवदत्तादर्शरूपो विषयः विभ्रमः--मनोभ्रान्तिः वा पादपूरणार्थकमिदं, स्याद्—भवेत् (तर्हि) मे--मम, विभ्रमः—बुद्धिभ्रमः, हि—एव, चिरं—दीर्घकालम्, अस्तु--तिष्ठतु ॥९॥

राजा—(एकाएक उठकर) वासवदत्ते ! ठहर। ठहर ! हाय। हाय ।।

मैं (वासवदत्ता का स्वरूप जानने की) शीघ्रता में निकलता हुआ दरवाजे के किनारे से टकरा गया। इससे मैं यह नहीं जानता कि यह वास्तविक घटना थी या (मेरे) मन के भाव (ही) ।।

(भीतर जाकर)

विदूषक—अरे ! आप तो जाग गए।

राजा—मित्र मैं खुशखबरी सुनाता हूँ। वासवदत्ता निःसन्देह जीवित है।

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता। कहाँ है वासवदत्ता ? वह तो बहुत पहले ही मर गई।

राजा--मित्र ऐसा न कहो;

मित्र पलंग पर सोये हुए मुझे जगाकर (वासवदत्ता) चली गई है। पहले (वासवदत्ता) जल गई—ऐसा कहने वाले रुमण्वान ने मुझे धोखा दिया ।।८।।

विदूषक—हाय ? यह असम्भव नहीं है। हाँ, उदक स्नान की चर्चा होने के कारण आपने महारानी वासवदत्ता का स्मरण करते हुए स्वप्न में उन्हें देखा होगा।

राजा--ऐसा, तो मैंने स्वप्न देखा है ?

यदि यह स्वप्न है तो जागना ही अच्छा होता और यदि मेरा भतिभ्रम है तो वह भी चिरकाल तक बना रहे ।।९।।

पद्य ७—यहाँ राजा के कथन का आशय यह है कि मैं यह नहीं जानता कि यह घटना सत्य है अथवा मेरे मन का भाव, टक्कर लगने से मैं वासवदत्ता को न पकड़ सका। पकड़ लेने पर तथ्य का पता चल जाता। अब तो यह मेरे मन की भावना भी हो सकती है जो मूर्त रूप में स्वप्नोपरान्त दिखायी पड़ी।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।।७।।

पद्य ८—महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री उक्त श्लोक के बाद और विदूषक की उक्ति के प्रथम 'पद्मावत्या मुखं वीक्ष्य विशेष कविभूषितम्। जीवत्यवन्तिकेत्येयं पूर्व विज्ञानमेव मे। इस श्लोक का पाठ मानते हैं। (अर्थात् पद्मावती के मुख पर तिलकों का वैचित्र्य देखकर पहले ही समझ लिया था कि वासवदत्ता जीवित है, क्योंकि ऐसा वैचित्र्य दूसरे के हाथ से सम्भव नहीं। परन्तु आदर्श पुस्तकों में इसका पाठ नहीं मिलता अतः यहाँ पर भी हमने छोड़ दिया। हाँ, इतना अवश्य है कि वासवदत्ता का जीवित होना निश्चित सा हो गया है, जिसके लिए राजा विशेष चिन्तित दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है ।।८।।

(क) अविहा ! शोक सूचक अव्यय है।

(ख) आ—स्मरणार्थक अव्यय।

पद्य ९—एकमात्र स्वप्न की घटना ही इस नाटक की अपने में जान है, इसका नामकरण भी इसी आधार पर हुआ है। इससे यह भी पता चलता है कि नायक अपनी प्रियतमा को कितना चाहता है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है ।।९।।

विदूषक—भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् । [भो वअस्स ! एदस्सिं ! णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे ।]

राजा—न न ।

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

विदूषक—मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा । एत्वेतु भवान् । चतुःशालं प्रविशामः । [मा दाणि भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु एट्ठं भवं । चउस्सालं पविसामो ।]

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह—एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेमोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि कामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान् ।

अपि च—

अन्वयः—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् दीर्घालकम् मुखं दृष्टम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—स्वप्नस्य–स्वप्नावस्थायाः, अन्ते—समाप्तौ, विबुद्धेन–जाग्रदवस्थायां स्थितेन (मया) चारित्रम्--सच्चरित्रताम् इति यावत् अपि—जीवितेन सह इति भावः, रक्षन्त्याः—पालयन्त्याः (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्—नेत्राभ्यां विप्रोषितं प्रवासं गतं दूरीभूतम् इति यावत् अञ्जनं कज्जलं यस्मिन् तत् तथाभूतम् दीर्घालकं—दीर्घा, लम्बमाना अलकाः चूर्णकुन्तलाः यस्मिन् तत् तादृशं, मुखं—आननं, दृष्टम् अवलोकितम् ॥१०॥

अन्वयः—सन्त्रस्तया तया देव्या यः अयम् बाहुः निपीडितः स्वप्ने अपि उत्पन्नसंस्पर्शः रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—संत्रस्तया—भीतया, तया देव्या—वासवदत्तया, योऽयं—पुरो दृश्यमानः, बाहुः—भुजः निपीडितः—स्वकरेण गृहीतः, (स भुजः) स्वप्नेऽपि—स्वप्नावस्थायामपि, उत्पन्नः संस्पर्शः,—उत्पन्नः सञ्जातः संस्पर्शः सम्पर्को तत्र तादृशः, रोमहर्षं—रोमाञ्चं, न मुञ्चति—न त्यजति ॥११॥

विदूषक—भो ! मित्र इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है। उसे आपने देखा होगा।

राजा—नहीं, नहीं।

स्वप्न के अन्त में जागने पर मैंने चरित्र की रक्षा करती हुयी वासवदत्ता का बिना काजल की आँखों वाला तथा लम्बे छूटे हुये बालों वाले मुख को देखा ॥१०॥

और भी मित्र ! देखो,

कहीं ये जाग न जाएँ इस विचार से डरती हुई उस देवी ने जो इस हाथ को पकड़ा सो निन्द्रावस्था में भी स्पर्श हो जाने से इसमें रोमाञ्च हो आया, जो अभी तक बना हुआ है ॥११॥

विदूषक—अब आप व्यर्थ की बात मत सोचिए। आइए, आप आइए। चौसाल में चलें।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो। हमारे महाराज दर्शक ने आपसे कहा है कि यह आपका मन्त्री रुमण्वान् भारी सेना के समूह के साथ (आपसे) आरुणि का वध कराने के लिए आ पहुँचा है। और मेरी विजय की सेनाएँ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल भी तैयार हैं। तो आप उठिए।

और भी—

पद्य १०. दीर्घालकम्—जिस पर घुंघराले बाल लटके हुऐ अर्थात् बिना संवारे हुए। क्योंकि पति-वियोग काल में शृङ्गार वर्जित हैं।—क्रीड़ां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका। अलक—जुल्फ, घुंघराले बाल। अलङ्कारश्चूर्णकुन्तलाः' इत्यमरः। यहाँ पर 'नेत्र विप्रोसिताञ्जनम् दीर्घालकम्' मुख के दो विशेषणों द्वारा विरह से व्यथित होने पर भी वासवदत्ता के सतीत्व का चित्रण बड़ी मनोहारिता के साथ चित्रित किया गया है ॥१०॥

पद्य ११. रोमहर्षम्—रोम्णां हर्षः तम्। रोमों का पुलकित हो जाना। जिस प्रकार वासवदत्ता के कर-स्पर्श से उदयन को रोमाञ्च हुआ है, ऐसा ही मनोमुग्धकारी चित्रण उत्तररामचरित में भी सीता के हस्त-स्पश का मिलता है। रोमाञ्च भी शृङ्गार के सात्त्विक भावों में से अन्यतम माना जाता है।

यहाँ अनुष्टुप् छन्द है ॥११॥

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः ।
पार्ष्णी यापि भवत् प्रयाणसमये तस्याः विधानं कृतम् ॥
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं ।
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा, वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

राजा—[उत्थाय] बाढम् । अयमिदानीम् ।

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे
तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे
महार्णवाभे युधि नाशयामि ।)१३॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

अन्वयः—ते रिपवः भिन्ना, भवद् गुणरताः पौराः समाश्वासिताः अपि भवत् प्रयाणसमये या पार्ष्णी तस्याः विधानं कृतम् । अरिप्रमाथजननं यत् साध्यम् तत् तद् मया अनुष्ठितम् । अपि च बलैः त्रिपथगा नदी तीर्णा, च वत्साः तव हस्ते ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—ते-तव, रिपवः—वैरिणः, भिन्नाः—भेदं प्रापिताः, भवद्गुणरताः—भवतः श्रीमतः गुणेषु दयादाक्षिण्यादिषु रताः अनुरक्ताः, पौराः—नागरिकाः, प्रजा इत्यर्थः, समाश्वासिताः—आश्वासनं प्रापिताः, अपि तथा, भवत् प्रयाणसमये—भवदीय विजययात्रावसरे, या पार्ष्णी—यत् सैन्यपृष्ठं तस्याः–पार्ष्ण्याः विधानं–रचनां, कृतम्–विहितम् । अरिप्रमाथजननं अरीणां–शत्रूणां प्रमाथः विध्वंस तस्य जननं उत्पादकं, यत् यत् कार्यं, साध्वं करणीयं, तत् तत् कार्यं मया—दर्शकेन, अनुष्ठितं—साधितम् । अपि च—अन्यच्च, बलैः—सैन्यैः, त्रिपथा–नदी गंगा नाम सरित् तीर्णा—लङ्घिता । च—अतः वत्साः—वत्सराज्यं तव–भवतः करे हस्ते स्थिताः सन्ति ॥१२॥

अन्वय—उपेत्य नगेन्द्र तुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरंगभङ्गे महार्णवाभे युधि दारुणकर्मदक्षम्, तम् नाशयामि ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—उपेत्य—अभिगम्य, नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे—हस्ति श्रेष्ठाश्व तरण क्रीड़ाविषयीकृते विकीर्ण बाणोग्रतरंगभङ्गे—विकीर्णाः प्रक्षिप्ताः बाणाः शराः उग्राः भीषणाः तरंगभङ्ग ऊर्मीणां लहर्य इव यस्मिंस्तादृशे, महार्णवाभे—महार्णवस्य महासागरस्य आभा इव आभा यस्य तथाभूते, युधि—संग्रामे, दारुणकर्मदक्षम् दारुण कर्मसु भयंकरकार्येषु दक्षं निपुणम् तं—प्रसिद्धं आरुणिं—एतन्नामकं शत्रुविशेषं नाशयामि उन्मूलयामि, नामशेषं करोमीत्यर्थः ॥१३॥

आपके शत्रुओं में फूट डाल दी गयी है। आपके गुणों पर अनुरक्त नगर-वासियों को पूरा धैर्य प्रदान किया गया है। चढ़ाई करते समय आपकी विजय-यात्रा के समय पीछे चलने वाली सेना की भी व्यवस्था की गई है। इस प्रकार शत्रुओं का विनाश करने वाला जो भी उपाय होना चाहिए, उन सबका प्रबन्ध कर लिया गया है। यहाँ तक कि सेना ने गंगा नदी पार कर ली। अब वत्सदेश भी आपके हाथ में ही है (ऐसा समझिये) ॥१२॥

राजा—(उठकर) ठीक, अभी यह मैं—आक्रमण करके विशाल हाथियों एवं घोड़ों से पार किये हुए और चलाए हुए बाणों रूपी भयंकर लहरों वाले महा-सागर के समान युद्ध में भयंकर कर्म करने में अत्यन्त पटु आरुणि को मार डालता हूँ ॥१३॥

(सबका प्रस्थान)

(पाँचवाँ अङ्क समाप्त)

विशेष

पद्य १२—यहाँ वत्स प्रदेश के जीतने की बात कही गयी है प्रत्येक प्रकार के प्रबन्ध भी कर लिए गये हैं। अधिक क्या कहा जाये शत्रुओं के विध्वंसनार्थ समग्र संविधान प्रस्तुत है ॥१२॥

यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

पद्य १३—इस श्लोक में युद्ध की उपमा महासमुद्र से उपन्यस्त की गयी। जैसे महासमुद्र में जलहस्ती और जलघोटक घूमा करते हैं वैसे ही समरांगण में हाथी घोड़े घूम रहे हैं। महासागर उत्ताल तरंगों से यदि उद्वेलित हुआ करता है तो समर क्षेत्र भी बाण-वर्षण की लहरों से तरंगित हो रहा है। इसमें उपमा अलङ्कार और उपेन्द्रवज्रा छन्द है ॥१३॥

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः । काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य अहं विजया । किं क्रियताम् ? [अय्य ! अहं विजआ। किं करीअदु ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य संकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्याचाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतिहारमुपस्थिताविति ।

प्रतीहारी—आर्य । अदेशकालः प्रतीहारस्य । [अय्य ! अदेशकालो पडिहारस्स ।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—शृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणावादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्दः इव श्रुयत इति। [सुणादु अय्यो । अज्ज भट्टिणो सुय्यामुप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं घोषवदीए सद्दो विअ सुणिअदि त्ति] ।

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोऽस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुलमलग्ना दृष्टा । यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रा इति । तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता । ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्-दृष्टासि घोषवति । सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः । कथं निवेदयामि ?

[तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो—कुदो इमाए बीणाए आगमो त्ति । तेण भणिअं अह्मेहि णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा । जइ प्पओअणं इमाए, उवणीअदु भट्टिणो त्ति । तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा । तदो मोहप्पच्चागदेण वप्फयय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअ—दिट्ठासि घोसवदि । सा हु ण दिस्सदि त्ति । अय्य ! ईदिसो अणवसरो । कहं णिवेदेमि ?]

काञ्चुकीयः—भवति । निवेद्यताम् इदमपि तदाश्रयमेव ।

छठा अङ्क

(उसके पश्चात् काञ्चुकी प्रवेश करता है।)

काञ्चुकीय—अरे, यहाँ कौन अपनी उपस्थिति से स्वर्ण तोरणद्वार को अशून्य कर रहा है? अर्थात् यहाँ कौन उपस्थित है?

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य! मैं विजया (उपस्थित) हूँ। (आपकी) क्या (सेवा) की जाये?

काञ्चुकीय—आर्ये! वत्सराज की प्राप्ति से जो वृद्धि (समृद्धि) को प्राप्त हो गये हैं ऐसे महाराज उदयन से कहिये—महासेन का भेजा हुआ रैभ्य के समान गोत्र (महत्व) वाला एक काञ्चुकी और अङ्गारवती द्वारा भेजी गई आर्या वासवदत्ता की वसुन्धरा नाम वाली धाई (दोनों ही) द्वार पर उपस्थित हैं।

प्रतीहारी—आर्य! प्रतिहारी द्वारा राजा को सूचना देने का यह उपयुक्त अवसर एवं स्थान नहीं है।

काञ्चुकीय—स्थान और समय उपयुक्त नहीं ऐसा क्यों?

प्रतीहारी—आर्य! सुनिये! आज महाराज के सूर्यामुख नाम वाले महल में जाकर किसी ने वीणा बजा दी। उसको सुनकर स्वामी ने कहा—(घोषवती वासवदत्ता की वीणा) का सा शब्द सुनाई पड़ रहा है।

काञ्चुकीय—फिर क्या हुआ?

प्रतीहारी—फिर वहाँ जाकर पूछा—यह वीणा कहाँ मिली? उन्होंने कहा—हमने नर्मदा नदी के तट पर घास की झाड़ी में पड़ी पायी। यदि स्वामी को इसकी आवश्यकता हो तो ले लें। ली हुई उस वीणा को गोद में रखकर राजा मूर्च्छित हो गये। फिर होश में आकर आँसू बहाते हुए बोले—घोषवती तुम्हें तो देख लिया किन्तु (तुम्हारी स्वामिनी वासवदत्ता) नहीं दिखाई पड़ रही है। आर्य! इस प्रकार अनुपयुक्त अवसर है। कैसे (जाकर आपकी बात) निवेदन करूँ?

काञ्चुकीय—देवि! निवेदन करें (राजा से)। यह भी उसी (प्रसंग) से सम्बन्धित है।

प्रतीहारी--आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्त्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि । [अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं ।]

काञ्चुकीयः--भवति तथा ।

(उभौ निष्क्रान्तौ)

मिश्रविष्कम्भकः

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा--

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं न देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥१॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति । या तपस्विन्या न स्मरसि—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥२॥

विदूषकः—अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य । [अलं दाणि भवं अदिमत्तं संतप्पिअ ।]

अन्वयः—श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता विहगगणरजो विकीर्णदण्डा प्रतिभयम् अरण्यवासम् कथं नु अध्युषितासि ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या--हे श्रुतिसुखनिनदे ! श्रुत्योः सुखः श्रवणानन्ददायी निनदो तालस्वरमन्वितः शब्दो यस्तास्तादृशे ! देव्याः वासवदत्तायाः, स्तनयुगले कुचयुगले जघनस्थले कटिपुरोभागे च, सुप्ता सुखशयनं प्राप्ता, विहगगणरजोविकीर्णदण्डा विहगगणेन पक्षियूथेन रजोभिर्धूलिभिश्च, विकीर्णो व्याप्तो, प्रतिभयम् भयङ्करम् अरण्यवासम् कथन्नु केन प्रकारेण अध्युषिता असि आश्रितवत्यसि ॥१॥

अन्वयः--श्रोणी समुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि च विरहे परिदेवितानि, वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि ।.२॥

संस्कृत-व्याख्या--श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीड़ितानि श्रोण्या तत्पुरोभागेन जघनेनेति यावत् समुद्वहानि वाद्यभाण्डस्य धारणानि, पार्श्वेन कक्षाधः प्रदेशेन निपीडितानि, खेदस्तानान्तरसुखानि--खेदे वादनक्रमे स्तनान्तरे कुचमध्यभागे, सुखानि सुखकराणि, उपगूहितानि उपगूहितानि आलिङ्गनानि च विरहे मद्वियोगे, परिदेवितानि विलापाः च वाद्यान्तरेषु वादनीयप्रकारविशेषेण सस्मितानि मन्दहासेन सहितानि कथितानि प्रशंसापराणि वचनानि न स्मरसि ॥२॥

प्रतीहारी—आर्य ! यह (अभी) निवेदन करती हूँ। ये महाराज 'सूर्यामुख' महल से उतर रहे हैं। तो यहीं पर कहूँगी।

काञ्चुकीय—देवि ! यही ठीक है।

(दोनों निकल जाते हैं।)

मिश्रविष्कम्भक

(उसके बाद राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—हे कानों को मधुर स्वरावलि से प्रसन्न सी करने वाली वीणा। देवि वासवदत्ता के कभी स्तनों के बीच कभी जंघा प्रदेश पर विश्राम करने वाली (तुम) पक्षियों के मल एवं धूलि से युक्त दण्ड वाली भयङ्कर वनप्रदेश में किस प्रकार रहीं ? ॥१॥

और भी, ऐ घोषवती ! तू स्नेहशून्य है जो उस बेचारी की—

(तुम्हें) गोद और बगल में दबाने की, थक जाने पर स्तनों के बीच में सुखपूर्वक आलिङ्गन कराने की, विरहावस्था में मुझे लक्ष्य करके विलाप करने की, तथा विभिन्न वाद्यों के अन्तरालों में कहे हुए स्मित-पूर्वक वचनों को याद नहीं करती हो।

विदूषक—अब आप बहुत अधिक संताप न कीजिये।

पद्य १—श्रुतिसुखनिनदे—घोषवती वीणा, जिसकी झंकार कर्णकुहरों को आनन्दित करने वाली होती है। यह सम्बोधन वीणा की विशिष्टता प्रकट करता है।

स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता—वासवदत्ता के स्तनों के मध्य एवं जघनस्थल पर विलास करने वाली घोषवती निश्चय ही पति के सदृश प्यारी थी। प्रस्तुत शब्द वीणा से वासवदत्ता के असीम लगाव की अनुभूति कराते हैं। ये दोनों ही स्थल विलास की भूमि हैं जो घोषवती को सहज ही प्राप्त हैं।

विहगगणरजो विकीर्णदण्डा—पक्षियों के मल एवं धूल से भरी दण्ड वाली वीणा। इसमें वीणा की दयनीय अवस्था का वर्णन है ॥१॥

पद्य २—विरहे परिदेवितानि—वासवदत्ता उदयन के वियोग में घोषवती वीणा को बजाकर अपनी विरह-वेदना प्रकट करती थीं। अब उदयन वासवदत्ता के वियोग में घोषवती को लेकर क्रन्दन कर रहा है यह इसमें व्यङ्ग्यार्थ है ॥२॥

राजा--वयस्य ! मा मैवम् ।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥३॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय।

विदूषकः—(वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः) यद् भवानाज्ञापयति । [जं भवं आणवेदि ।]

(प्रविश्य)

प्रतीहारी--जयतु भर्त्ता ! एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ । [जेदु भट्टा । एसो खु महासेणस्स सआसादो रैब्भससगोत्तो कंचुईओ देवीए अङ्गारवदीए । पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ताधत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा ।]

राजा--तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम् ।

प्रतीहारी--यद् भर्त्ताज्ञापयति । [जं भट्टा आणवेदि ।] (निष्क्रान्ता)।

राजा--किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च)

प्रतीहारी--एत्वेतु भर्तृदारिका [एदु एदु भट्टिदारिआ ।]

पद्मावती--जयत्वार्यपुत्रः । [जेदु अय्यउत्तो ।]

राजा--पद्मावति ! किं श्रुतम्--महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ता धात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

पद्मावती-- आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम्। [अय्यउत्त ? पिअं मे जादिकुलस्स कुसलवुत्तंत सोदुं ।]

राजा-- अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम्--'वासवदत्ता स्वजनो मे स्वजन इति' । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

पद्मावती--आर्यपुत्र ! किं मया सह-- उपविष्टः एतं जनं द्रक्ष्यति, [अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एदं जणं पेक्खिस्सदि ?]

अन्वयः--चिरप्रसुप्तः मे कामो वीणया प्रतिबोधितः । यस्या घोषवती प्रिया तां देवीं तु न पश्यामि ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या--चिरप्रसुप्तः चिरं शयितः, मे मम कामः मानसोऽभिलाषः वीणया अनया घोषवत्या प्रतिबोधितः उद्बोधितः । सेयं वीणा यस्या वासवदत्तायाः प्रिया-प्रीतिपात्रम् तां देवीं वासवदत्तां तु न पश्यामि न साक्षात्करोमि । अनुष्टुब् वृतम् इदम् ॥३॥

राजा—हे मित्र ! ऐसा नहीं है, बहुत दिनों से सोये पड़े मेरे प्रेम को वीणा ने जगा दिया। (यह वीणा तो दिखाई पड़ रही है) किन्तु वह नहीं दिखाई पड़ रही है जिसको यह घोषवती (वीणा) अत्यन्त प्रिय थी।

वसन्तक ! कारीगरों के पास से घोषवती नये रूप में कराकर अर्थात् मरम्मत कराकर शीघ्र लाओ।

विदूषक—जो श्रीमान् की आज्ञा। (वीणा लेकर निकल जाता है)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो। यह महासेन के पास से आये हुए रैभ्यसगोत्रीय काञ्चुकीय और देवी अङ्गारवती द्वारा भेजी गई वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाय द्वार देश पर उपस्थित हैं।

राजा—तो फिर पद्मावती को बुलाओ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा। (चली जाती है)

राजा—क्या महासेन ने यह वृत्तान्त (पद्मावती से विवाह) इतनी जल्दी जान लिया ?

(उसके पश्चात् पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आइये, आइये राजकुमारी जी।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—प्रिय पद्मावती ! क्या (तुमने) सुना—महासेन के समीप से रैभ्य-सगोत्रीय काञ्चुकीय महारानी अङ्गारवती द्वारा भेजी गई वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाय दोनों द्वार देश पर उपस्थित हैं ?

पद्मावती - आर्यपुत्र ! अपने प्रियजनों का कुशल समाचार सुनना मुझे अभीष्ट है।

राजा—देवी ! आपने यह अपने (मर्यादा के) अनुरूप ही कहा—'वासवदत्ता के प्रियजन मेरे भी प्रियजन है, इस प्रकार। पद्मावती ! बैठो। इस समय (तुम) बैठ क्यों नहीं रही हो।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! क्या आप मेरे साथ बैठे हुए ही उन लोगों से मिलेंगे ?

पद्य ३३—इस श्लोक में वासवदत्ता के प्रति उदयन के असीम प्यार का आभास होता है मानो वासवदत्ता की मृत्यु के साथ ही उदयन की सारी अभिलाषायें भी सो गई और पुनः इस वीणा के दर्शन से जागरूक हो गयी हों।

इस पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥

राजा—कोऽत्र दोषः ?

पद्मावती—आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति। [अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात्—परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति। तस्मादास्यताम्।

पद्मावती—यदार्यपुत्र आज्ञापयति। आर्यपुत्र! तातो वा (अम्बा वा) किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेन संवृत्ता। [जं अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविश्य) अय्यउत्त! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति आव्विग्गा विअ संवुत्ता।]

राजा—पद्मावति! एवमेतत्।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥४॥

पद्मावती—ननु किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले? [ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले!]

प्रतीहारी—एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ [एसो कंचुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

प्रतीहारी—यद् भर्त्ताज्ञापयति। [जं भट्टा आणवेदि।] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च।)

अन्वयः—किं वक्ष्यतीति मे हृदयं परिशङ्कितम्, मया कन्या अपहृता अपि सा न च रक्षिता। चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितृर्जुनितः रोषः पुत्रः इव भीतः अस्मि ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—किं वक्ष्यतीति किं संदेक्ष्यति इति, मे मम हृदयं मनः परिशङ्कितम् शंकायुक्तं वर्तते। मया वत्सराजेनित्यर्थः कन्या अनूढा अपहृता उज्जयिन्याः पलाय्य कोशाम्बीमानिता, च अपि सा वासवदत्ता न रक्षिता न परिपालिता। चलैः चञ्चलैः भाग्यैः पूर्वजन्मकृतकर्मभिर्हेतुभूतैः महदवाप्तगुणोपघातैः महत्सु गुरुजनेषु अवाप्तः प्रान्तः गुणानाम् सदाचारादिनाम् उपघातो भङ्गो येन सः, (अहं) पितुर्जनितः जनकस्य उत्पादितः रोषः क्रोधः येन सः पुत्रः इव भीतः शङ्कितः अस्मि। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥४॥

राजा—इसमें कोई दोष है क्या ? अर्थात् इसमें कोई दोष नहीं है।

पद्मावती—आर्यपुत्र की यह दूसरी पत्नी है ऐसा सोचकर वे दुःखी होंगे।

राजा—'स्त्री को जो देखने योग्य है उससे ही स्त्री को छिपाता है' यह बात अनेक दोष उत्पन्न करेगी। इसलिये बैठ जाओ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा। (बैठकर) आर्यपुत्र ! पिताजी या माता जी क्या कहेंगे यह सोचकर उद्विग्न सी हो रही हूँ।

राजा—पद्मावती ! यह ठीक ही है।

(महासेन) क्या कहेंगे—इस विषय में मेरा भी हृदय शङ्कित है। मैंने (उनकी) पुत्री का अपहरण तो किया किन्तु उनके जीवन की रक्षा न कर सका। चञ्चल भाग्य (की विडम्बना) से गुरुजनों के प्रति दोष का भागी मैं पिता के क्रोध से डरे हुए पुत्र की भाँति ही भयग्रस्त हो रहा हूँ।

पद्मावती—काल आ जाने पर भला किसे बचाया जा सकता है ?

प्रतीहारी—ये काञ्चुकीय और धाय दोनों द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—शीघ्र बुलाइये।

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा।

(निकल जाती है)

(उसके बाद काञ्चुकीय, धाई और प्रतीहारी का प्रवेश)

विशेष

पद्य ४—भाग्यै······उपघातः—दुर्भाग्यवश—गुरुजनों के प्रति हो गया अपराध।

शीघ्रं प्रवेश्यताम्—शीघ्र ही बुलाये जायें। यह उक्ति राजा के अव्यवस्थित मस्तिष्क का आभास कराती है।

यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

काञ्चुकीयः—भोः !

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः ।
किं नाम दैव ! भवता न कृतं यदि स्यात्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥५॥

प्रतीहारी—एस भर्त्ता ! उपसर्पत्वार्यः एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो ।]

काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

धात्री—जयतु भर्ता । [जेदु भट्टा ।]

राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मय काङ्क्षितबान्धवः ॥६॥

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुलशी महासेनः । इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य । नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देश ।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः । (उपविशति)

काञ्चुकीयः—दिष्टया परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः ?

अन्वयः—सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः, पुनः नृपसुतानिधनं स्मृत्वा विषादः । हे दैव ! परैः अपहृतं राज्य देव्याः कुशलं स्याद् भवता किं नाम न कृतम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या

सम्बन्धिराज्यं उदयनस्य राजमेत्य प्राप्य महान् भूयान् प्रहर्षः प्रमोदः, पुनः पुनश्च नृपसुतायाः वासवदत्तायाः निधनं मरणं स्मृत्वा विषादः खेदो भवतीति शेषः । दैव ! विधे ! परैः शत्रुभिः अपहृतं स्वायत्तीकृतं राज्यं वत्सदेशाधिपत्यं देव्याः वासवदत्तायाः कुशलं क्षेमं स्याद् भवेत् भवता त्वया किं नाम हितमिति शेषः न कृतं स्याद् न सम्पादितं भवेत् ॥३॥

अन्वयः—पृथिव्यां भूमौ राजवंश्यानां उदयास्तमयप्रभुः मया काङ्क्षितबान्धवः भ राजा अपि कुशली ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—पृथिव्यां भूमौ राजवंश्यानाम् राजवंशोद्भवानां राजामिति यावत् उदयास्तमयप्रभुः उत्कर्षः विनाशश्च तयोः प्रभुः समर्थः मंडलेश्वरः सम्राट् इति यावत् । मया उदयनेन काङ्क्षितः अभिलाषितः चासौ बान्धवः बन्धुश्च असौ राजा प्रद्योतः अपि कुशली ? अनुष्टुप् वृत्तम् ॥६॥

कञ्चुकीय---ओह !

(इस) सम्बन्धी के राज्य में आकर महान् हर्ष का अनुभव हो रहा है। (साथ हीं) राजपुत्री की मृत्यु का स्मरण कर दुःख भी हो रहा है। हे देव ! क्या ही अच्छा होता कि शत्रुओं द्वारा छीना हुआ राज्य की पुनः प्राप्ति के शुभ समाचार के साथ ही देवी वासवदत्ता के कुशल समाचार की भी प्राप्ति हो जाती।

प्रतीहारी--ये महाराज हैं। आप लोग (उनके) पास जायें।

काञ्चुकीय---(पास जाकर) महाराज की जय हो।

धात्री---स्वामी की विजय हो।

राजा---(बड़े आदरपूर्वक) आर्य !

पृथ्वी के समस्त राजाओं की उन्नति तथा अवनति करने में समर्थ मेरे अभीष्ट राजा (महासेन) कुशलतापूर्वक तो हैं ॥६॥

काञ्चुकीय---और क्या ? महासेन सकुशल हैं और यहाँ भी आप सबकी कुशल पूछते हैं।

राजा---(आसन से उठकर) महासेन की क्या आज्ञा है ?

काञ्चुकीय---(यह आसन से उठ जाना) वैदेहीपुत्र के अनुरूप ही शिष्टाचार है। फिर आसन पर बैठे हुए ही आप महाराज का सन्देश सुने।

राजा---महासेन की जो आज्ञा। (बैठ जाता है।)

काञ्चुकीय---भाग्य से शत्रुओं से छीना हुआ राज्य फिर वापस ले लिया गया है। क्योंकि---

---

विशेष

पद्य ५---किं नाम······च क्रियाः---उदयन के शत्रुओं द्वारा अपहृत राज्य की प्राप्ति के साथ-साथ मृत घोषिता वासवदत्ता के कुशलता की कामना आगे आने वाली घटनाओं का आभास कराता है।

इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

पद्य ६---पृथिव्यां······प्रभुः--- सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं को परास्त करने में समर्थ महासेन। महासेन का नाम उनकी समर्थता का द्योतक है। महासेन अर्थात् विशाल वाहिनी से युक्त। सेना ही राजाओं की शक्ति होती है अतः महासेन तत्कालीन राजाओं में सर्वाधिक समर्थ माने जाते थे।

यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।।७।।

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनस्य प्रभावः । कुतः—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
हृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान्वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ।।८।।

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः देव्याः सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति ।

राजा—हा ! अम्ब !

षोडशान्तः पुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।
मम प्रवासदुःखार्त्ता माता कुशलिनी ननु ।।९।।

अन्वयः—ये कातरा अपि वा अशक्ता तेषु उत्साहो न जायते । प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव सोभुज्यते ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या

ये पुरुषाः—कातराः भीरवः वा अशक्ताः असमर्था (सन्ति) तेषु पुरुषेषु उत्साहोऽध्यवसाय न जायते नोत्पद्यते । हि नूनं प्रायेण बहुधा नरेन्द्रश्रीः राज्यलक्ष्मीः सोत्साहैरेवोत्सा ह सम्पन्नैरेव पुरुषैः भुज्यते सेव्यते । अनुष्टुप् वृत्तम् ।।७।।

अन्वयः—पूर्वं अवजितः सुतैः सह लालितो, मया कन्या अपहृता भूयः न रक्षिता । तस्याः निधनं अपि श्रुत्वा तथैव मयि स्वता, ननु उचितान्वत्सान् प्राप्तुं नृपो हि अत्र कारणम् ।।८।।

संस्कृत-व्याख्या—पूर्वं पुरा अवजितः पराजित निगृहीतोऽप्यहं सुतैः सह स्वपुत्रैः समं लालितो लालनपूर्वकं पालितोऽभवम्, च मया उदयनेन कन्या महासेनस्य कुमारी वासवदत्तेति यावत् अपहृता पलायिता भूय. पुनश्च न रक्षिता न पालिता । तस्याः वासवदत्तायाः निधनं मरणं अपि श्रुत्वा तथैव पूर्ववदेय मयि मद्विषये स्वता आत्मीयता । ननु उचितान्यत्सान् मदीयराज्यभूतान् वत्सान् प्राप्तुं अधिगन्तुं नृपो हि प्रद्योत एव कारणं निमित्तम् हरिणी वृत्तम् ।।८।।

अन्वयः—षोडशान्तः पुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता, मम प्रवासदुःखार्ता माता ननु कुशली ? ।।९।।

संस्कृत-व्याख्या—षोडशान्तः पुरज्येष्ठा-षोडशानामन्तः पुरस्थानां स्त्रीणां मध्ये ज्येष्ठा प्रधानभूता, पुण्या पवित्रचरिता, नगरदेवतापूजनीयत्वात् नगरदेवतेव प्रतिष्ठिता, मम मे प्रवासदुःखार्ता वियोगपीडिता माता ननु कुशलयुक्ता वर्तते । अनुष्टुप् वृत्तम् ।।९।।

जो कायर एवं असमर्थ होते हैं उनमें कभी उत्साह पैदा नहीं होता। प्रायः राज्यलक्ष्मी का उपभोग उत्साही पुरुष ही करते हैं ।।७।।

राजा—आर्य ! यह सब महासेन का ही प्रभाव है। क्योंकि—

पहले मुझे जीतकर जिसने अपने लड़कों के साथ पालन-पोषण किया, फिर मैंने उनकी कन्या का कठोरतापूर्वक अपहरण तो किया किन्तु उसकी रक्षा नहीं कर सका। (अपनी बेटी की) मृत्यु भी सुनकर उसका मेरे ऊपर पूर्ववत् प्रेम बना हुआ है, निश्चय ही अपना उचित राज्य वत्स को जो मैंने पुनः प्राप्त किया है उसके कारण महाराज महासेन ही हैं ।।८।।

राजा—हा माँ !

(प्रद्योत की) सोलह रानियों में ज्येष्ठ, पवित्र नगर की देवता, मेरे प्रवास के दुःख से पीड़ित माता कुशलपूर्वक तो है ।।९।।

विशेष

पद्य ७—प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः······भुज्यते—राज्यलक्ष्मी का उपभोग वीर पुरुष ही कर सकते हैं। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' कहकर पहले ही मनीषियों ने इस तथ्य की पुष्टि कर डाली है। यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है ।।७।।

पद्य ८—अहमवजितः—पहले (मैं) विजित होकर। मृगया के लिए गए हुए उदयन को महासेन ने कैद कर लिया था।

सुतैः सह लालितो—अपने पुत्रों के साथ लालन-पालन जिसको प्राप्त हुआ वैसा मैं (उदयन)। महासेन की वत्सलता दृष्टिगोचर होती है।

नृपोऽत्र हि कारणम्—राजा ही इसके (राज्य-प्राप्ति) के कारण हैं। यह भाव है। यहाँ हरिणी छन्द है।

पद्य ९—षोडशान्तः पुरज्येष्ठा—अन्तःपुर की सोलह रानियों में प्रधान। यहाँ तत्कालीन सामाजिक अवस्था का परिचय मिलता है जिसमें बहुपत्नीवाद प्रचलित था। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

धात्री—अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति । [अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पृच्छदि ।]

राजा—सर्वगतं कुशलमिति । अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ?

धात्री—मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् । [मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं ।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः । उपरताऽप्यनुपरता महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ।।१०।।

राजा—आर्य ! मा मैवम्,

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ।।११।।

धात्री—आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता । मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृशं एवं त्वम् प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति । एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः । अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता । आत्मनश्चपलतयाऽनिवृत्तविवाहमङ्गल एव गतः । अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निवृत्तः । एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता । एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव । [आह भट्टिनी—उवरदा वासवदत्ता । मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पुढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति । एदण्णिमित्तं उज्जइणि आणीदो । अणग्गिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा । अत्तणो चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो । अहअ अह्म हि तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्बुत्तो । एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा । एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि ।]

अन्वयः—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः, रज्जुच्छेदे घटं के धारयन्ति ? एवं लोकः वनानां तुल्यधर्मः काले काले छिद्यते रुह्यते च ।।१०।।

संस्कृत-व्याख्या

मृत्युकाले मरणावसरे कः कं रक्षितुं कर्तुं शक्तः समर्थः ? न कोऽपि इत्यर्थः । रज्जो गुणस्य छेदे भङ्गे सति घटं के धारयन्ति घटस्य धारणे कः समर्थः ? एवं लोकः जनः वनानां वृक्षाणां तुल्यः समानो धर्मः स्वभावः काले काले समये समये छिद्यते छिन्नो भवति रुह्यते उपपद्यते च ।।१०।।

अन्वयः—महासेनस्य दुहिता मे शिष्या, देवी प्रिया च । सा देहान्तरेष्वपि कथं मया स्मर्तुं न शक्या ।।११।।

संस्कृत व्याख्या—महासेनस्य तन्नामभूपतेः दुहिता कन्या, मे मम शिष्या छात्रा, देवी कृताभिषेका महिषी प्रिया चासीत् । सा वासवदत्ता देहान्तरेषु अन्येषु जन्मसु अपि कथं केन प्रकारेण मया उदयनेन इत्यर्थः, स्मर्तुं चिन्तयितुं न शक्या पार्या । अनुष्टुप् वृत्तम् ।।११।।

धात्री—सकुशल महारानी महाराज की सपरिवार कुशलता पूछती हैं।

राजा—सबका कुशल ? माँ ! ऐसा कुशल है—

धात्री—स्वामी ! अब आप अधिक शोक न करें।

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र धैर्य धारण करें। महाराज के द्वारा इस प्रकार से स्मरण की जाती हुई वासवदत्ता मर कर भी अमर है। अथवा,

मृत्यु का समय उपस्थित हो जाने पर कौन किसकी रक्षा कर सकता है ? रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को नीचे जाने से बचा सकता है ? इसी प्रकार से संसार के (मनुष्य) भी वृक्षों के ही समान हैं जो समय-समय पर कटते और फिर पैदा होते रहते हैं।

राजा—आर्य ! नहीं ऐसा मत कहिए,

महासेन की पुत्री (वासवदत्ता) मेरी शिष्या, रानी और प्रेमिका थी। मरणोपरान्त भी मैं उसे जन्म जन्मान्तर तक ऐसे ही स्मरण करता रहूँगा।

धात्री—महारानी ने कहा— वासवदत्ता तो मर गई। मेरे लिये या महासेन के लिये गोपाल और पालक वैसे ही तुम पहले ही जामाता मान लिए गए हो। इसीलिए तुम उज्जयिनी लाये गये थे। अग्नि को साक्षी किये बिना ही यह वीणा सिखाने के बहाने से तुम्हें दे दी गई थी। अपनी चञ्चलता के कारण विवाह मङ्गल-कार्य को सम्पन्न किये बिना ही तुम चले गये। तब हम दोनों तुम्हारा और वासवदत्ता दोनों के चित्र चित्र-पट पर अंकित कर दोनों का विवाह कर दिया। वह चित्रफलक तुम्हारे पास भेजा है। इसे देखकर शान्त हो जाओ।

विशेष

पद्य १० —कः कं······देहान्तरेष्वपि—मृत्यु अवश्यम्भावी है और यह अलङ्घनीय है पुनरपि यह शरीरगत है। यह भारतीय दर्शन की चरम सीमा है और लौकिकता का एक अच्छा उदाहारण है। शोक-सन्तप्त मन को सान्त्वना प्रदान करने का यह लोकविहित मार्ग आज भी जन साधारण में प्रचलित है।

इस श्लोक में शालिनी छन्द है ॥१०॥

पद्य ११—महासेनस्य······में प्रिया --यहाँ उदयन का वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम दृष्टिगोचर होता है। एक ही स्त्री में विभिन्न रूपों का सामञ्जस्य दुर्लभ होता है और यहाँ इसकी उपलब्धि है। यही इस युक्ति की गरिमा है।

यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्र भवत्या ।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥१२॥

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्रगतगुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि । [अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि ।]

धात्री—पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका । (चित्रफलकं दर्शयति) [पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हम् ! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिमायाः आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ! [हं अदिसदिसा खु इअं अय्याए आवन्तिआए (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ?]

राजा—न सदृशी । सैवेति मन्ये । भोः । कष्टम्—

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ?
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥१३॥

पद्मावती—आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेत्ति । [अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति ।]

धात्री—पश्यतु भर्तृदारिका । [पेक्खुदु पेक्खदु भट्टिदारिआ ।]

पद्मावती–(दृष्ट्वा) आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति [अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसित्ति ।]

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! अस्या प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति । [अय्यउत्त ! इमाए पडीकिदीए सदिसी इह इव्व पडिवसदि ।]

अन्वयः—एतद् वाक्यं राज्यलाभशतादपि प्रियतरं । यद् अपराद्धेषु अस्मास्वपि स्नेहो न विस्मृतः ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

एतद् वाक्यं वचनं राज्यलाभशतादपि बहुराज्यप्राप्तेरपि प्रियतरं सविशेषं प्रियमस्ति इत्यर्थः । यत् यतः अपराधेषु अस्मास्वपि कृतापराधेषु अस्मास्वपि स्नेहो वात्सल्यं न विस्मृतः विस्मृतिं न नीतः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥१२॥

अन्वयः—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् सम्पद्यत इति शेषः । इदं च मुखमाधुर्यं अग्निना कथं दूषितम् । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य दृश्यमानस्य स्निग्धस्य सरसस्य लावण्यपूर्णस्य वर्णस्य रूपस्य दारुणा भीषणा विपत्तिर्विनाशः कथं केन प्रकारेण अभूत इति शेषः । इदम् अलौकिकं मुखस्याननस्य माधुर्यं आकर्षणत्वं अग्निना वह्निना कथं केन प्रकारेण दूषितम् वैरूप्यं नीतः ॥१३॥

राजा—अहो ! महारानी जी ने अत्यन्त प्रेम युक्त अपने अनुरूप ही कहा है। यह (महारानी के द्वारा कहा गया) वाक्य सैकड़ों राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्रिय है । जो उन्होंने मेरे अपराधी होने पर भी अपना प्रेम नहीं भुलाया ॥१२॥

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र में अंकित गुरुजन (वासवदत्ता) को प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धात्री—देखिये, देखिये राजकुमारी जी । (चित्रपट को दिखाती हैं ।)

पद्मावती—(देखकर मन में) हूँ, यह तो आर्या अवन्तिका से अत्यन्त मिलती जुलती है । (प्रकट) आर्यपुत्र ! क्या यह चित्र आर्या के सदृश ही है ?

राजा—समान नहीं । मैं इसे वही मानता हूँ । हाय ! कष्ट—

इस सुन्दर वर्ण पर (अग्नि दाहरूपी) भयानक विपदा कैसे आयी होगी ? यह मुख की मधुरिमा (लावण्य) अग्नि द्वारा किस प्रकार बिगड़ गई होगी । अर्थात् यह सुन्दर मुखड़ा भयंकर अग्नि में किस प्रकार सतप्त होकर जला होगा ॥१३॥

पद्मावती—आर्यपुत्र का चित्र देखकर ही यह चित्र आर्या के समान है या नहीं यह समझूंगी ।

धात्री—देखिये, देखिये राजकुमारी जी ।

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की सदृशता से (मैं) यह चित्र भी आर्या का सदृश ही है ऐसा समझती हूँ ।

राजा—चित्र देखने के बाद से मैं तुम्हें प्रसन्न और कुछ व्याकुल सा देख रहा हूँ । यह क्या ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस चित्र से मिलती जुलती रूप वाली एक स्त्री यहीं रहती है ।

विशेष

पद्य १२—अपराद्धेष्वपि—अप + राध् + क्त । हम अपराधियों से भी । उदयन अपनी सास अङ्गारवती की महनीयता प्रदर्शित करते हुये कहता है कि यद्यपि हमने उनकी कन्या का अपहरण आदि अनेक अक्षम्य अपराध किए हैं परन्तु हम अपराधियों पर से भी उन्होंने अपना प्रेम नहीं भुलाया है ।

पद्य १३—स्निग्धस्य वर्णस्य—प्रिय, आकर्षणयुक्त वर्ण का ।

मुखमाधुर्यं—मुख का सौन्दर्य । यहाँ वासवदत्ता की छवि जो जल गई उसकी [illegible] से महाराज अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं ।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम । [आम् ।]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः । [अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि ब्राह्मणेन मम भअणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो । पोसिदत्तुआ परपुरुसदंसणं परिहरदि । ता अय्या मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो ।]

राजा—यदि विप्रस्य भगिनि व्यक्तमन्या भविष्यति ।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ।।१४।।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जयतु भर्त्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः । [जेदु भट्टा । एसो उज्जइणओ ब्रह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो ।]

राजा—पद्मावती ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

पद्मावती—भवितव्यम् [होदव्वं ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ?

प्रतीहारी—यद् भर्ताज्ञापयति [जं भट्टा आणवेदि ।]

(निष्क्रान्ता)

राजा—पद्मावती ! त्वमपि तामानय ।

पद्मावती—यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । [जं अय्यउत्तो आणवेदि ।]

(निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायणः—भो । [आत्मगतम्]
प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।

अन्वयः—यदि विप्रस्य भगिनी, व्यक्तं अन्या भविष्यति । परस्परगता लोके रूपतुल्यता दृश्यते ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या

यदि चेत् विप्रस्य ब्राह्मणस्य कस्यचित्तवसा वर्तते, तर्हि व्यक्तं स्पष्टं अन्या वासवदत्ताया इतरा काचिद् भविष्यति स्यादिति । परस्परगतालोके संसारे परस्परं रूपतुल्यता—स्वरूप सादृश्यं दृश्यते प्रत्यक्षमनुभूयते ।।१४।।

राजा—क्या वासवदत्ता जैसी ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो शीघ्र ही (उसे) बुलाओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! जब मैं कुँआरी थी तब किसी ब्राह्मण ने मेरी बहन है ऐसा कहकर धरोहर के रूप में उसे रखा है । जिसके पति परदेश में चले गये हैं ऐसी वह पर-पुरुष के दर्शन से बचती है । तो मेरे साथ आने पर उसको आर्या देखें और तब आर्यपुत्र जानेंगे (कि इस चित्र में और उसमें कितनी समानता है ।)

राजा—यदि (वह) ब्राह्मण की बहन है तो निश्चित रूप से कोई दूसरी होगी । संसार में परस्पर रूप की समानता दृष्टिगोचर होती है ॥१४॥

पद्मावती—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो । यह उज्जयिनी से आया हुआ ब्राह्मण राजकुमारी के पास धरोहर रूप में रखी हुई अपनी बहन को वापस लेने के लिए खड़ा है ।

राजा—प्रिये क्या यह (वही) ब्राह्मण है ?

पद्मावती—हो सकता है ।

राजा—राजभवन में समुचित आदरपूर्वक वह ब्राह्मण शीघ्र ही अन्दर लाया जाये ।

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा । (चली जाती है)

राजा—पद्मावती ! तुम भी उसे ले लो ।

पद्मावती—जो आर्यपुत्र की आज्ञा (चली जाती है) ।

यौगन्धरायण—(मन में) अहो !

राजा के हित के लिए अपनी इच्छानुसार महारानी (वासवदत्ता) को 'आग में जल गई' इस षड्यन्त्र के द्वारा छिपाकर महाराज का कल्याण किया मेरे

विशेष

पद्य १४—परम्परागत—रूपतुल्यता—इस संसार में एक दूसरे के रूप में समानता होती है यह कह कर विप्रभगिनी को देखने से मना करके राजा ने अपनी धर्मनिष्ठा एवं कर्त्तव्यपरायणता का समुचित प्रदर्शन किया है ।

सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥१५॥

प्रतीहारी—एष भर्त्ता । उपसर्पत्वार्यः [एसो भट्टा । उपसप्पदु अय्यो ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु ।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः । भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका ।

प्रतीहारी—यद् भर्ताज्ञापयति । [जं भट्टा आणवेदि ।] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च)

पद्मावती—एत्वेत्वार्या । प्रियं ते निवेदयामि । [एदु एदु अय्या ! पिअं दे णिवेदेमि ।]

आवन्तिका—किं किम् ? [किं किं ?]

पद्मावती—भ्राता ते आगतः [भादा दे आअदो ।]

आवन्तिका—दिष्ट्येदानीमपि स्मरति । [दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि ।]

पद्मावती—(उपसृत्य) जयत्वार्यपुत्र । एषः न्यासः । [जेदु अय्यउत्तो । एसो ण्णासो ।]

राजा—निर्यातय पद्मावती ! साक्षिमन्नायो निर्यातयितव्यः । इहात्र-भवान् रैभ्यः अत्रभवति चाधिकरणं भविष्यतः ।

पद्मावती-आर्य ! नीयतामिदानीमार्या । [अय्य ! णीअदां दाणिं अय्या ।]

धात्री--अम्मो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता । (आवन्तिकां निर्वर्ण्य) [अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता !]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविशत्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

अन्वयः—नृपतेर्हितार्थं राजमहिषी प्रच्छाद्यमया कामं हितमित्यवेक्ष्य इदं कृतं । मम कर्मणि सिद्धेऽपि नाम असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशंकितम् ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या

नृपतेर्हितार्थं उदयनस्य हिताय राजमहिषीं महाराज्ञीं वासवदत्तामिति यावत् प्रच्छाद्य अवन्तिकारूपेण संगोप्य मया काम स्वैरं हितं लाभम् अवेक्ष्य अवधार्य कृतं सम्पादितम् । मम कर्मणि सिद्धेऽपि नाम प्राप्तफलेऽपि मम कर्मणि असौ पार्थिवः उदयनः किं वक्ष्यतीति किं अभिधास्यति इति मे मम हृदयं अन्तःकरणं परिशङ्कितम् शङ्काकुलं वर्तते ॥१५॥

वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सभी कार्य सिद्ध हो जाने पर भी राजा मेरे कार्यों के विषय में क्या कहेगा यह सोचकर मेरा हृदय शङ्कित हो रहा है।

प्रतीहारी—ये महाराज हैं। आप आगे बढ़िये।

यौगन्धरायण—(समीप जाकर) जय हो, आपकी जय हो।

राजा—(यह) स्वर पहले सुना जैसा लगता है। हे ब्राह्मण! क्या आपकी बहन पद्मावती के पास धरोहर रूप में रखी हुई है।

यौगन्धरायण—और क्या?

राजा—तो शीघ्र ही इनकी बहन को यहाँ लाओ।

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा [चली जाती है।]

(इनके पश्चात् पद्मावती आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आओ, आओ आर्या! मैं तुम्हें प्रिय समाचार सुनाती हूँ।

आवन्तिका—क्या क्या?

पद्मावती—आपके भाई आये हैं।

आवन्तिका—मेरे धन्य भाग जो मैं अब भी उन्हें याद हूँ।

पद्मावती—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह धरोहर है।

राजा—पद्मावती! इसे लौटा दो। अथवा धरोहर साक्षियों के सामने लौटानी चाहिए। यहाँ श्रीमान् रैभ्य और आर्या वसुन्धरा इनके साक्षी होंगे।

पद्मावती—हे आर्य! (इन साक्षियों के समक्ष) आर्या आवन्तिका को ले जाइये।

धात्री—(आवन्तिका को ध्यानपूर्वक देखकर) अरे, (यह) राजकुमारी वासवदत्ता है।

राजा—क्या महासेन पुत्री? देवी! पद्मावती के साथ अन्तःपुर में जाओ।

यौगन्धरायण—नहीं अन्तःपुर में मत भेजिये। यह तो मेरी बहन है।

राजा—यह आप क्या कह रहे हैं? यह तो महासेन की पुत्री वासवदत्ता है।

विशेष

पद्य १५—नृपतेर्हितार्थं—राजा के हित के लिये। राजा वासवदत्ता के जीवन-काल में पद्मावती से विवाह नहीं कर सकते थे और खोये हुये राज्य की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक था। अतः यौगन्धरायण का यह कार्य राजा के कल्याण के लिए था।

इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥१६॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् संक्षिप्यतां यवनिका ।

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता—जयत्वार्यपुत्रः । [जेदु अय्यउत्तो ।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः ? सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाप्येवमेवाहं दृष्टया वाञ्चितस्तदा ॥१७॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । [इति पादयोः पतति ।]

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥१८॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

अन्वयः—भारतानां कुले जातो विनीतः ज्ञानवान् शुचिः राजधर्मस्य देशिकः, तत् बलात् हर्तुं नार्हसि ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

भारतानां भरतवंशजानां कुले वंशे जातः उत्पन्नः विनीतः शिक्षितो नम्रः ज्ञानवान् सद असद्विवेकशीलो बुद्धिमान् शुचिः पवित्राचारो निर्मलान्तःकरणः, राजधर्मस्य राजोचितकर्त्तव्यस्य देशिकः प्रवर्तकः । तत् ममैतां भगिनीं परकीयामिति यावत् बलात् हठात् हर्तुं गृहीतुं नार्हसि न योग्योऽसित्वम् ॥१६॥ वृत्तमनुष्टुप् ।

अन्वयः—किं नु इदं सत्यं (वा) स्वप्नः, सा भूयः मया दृश्यते । एवमेवाहं तदा दृष्टयापि अनया वञ्चितः ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—पूर्वोक्तं दृश्यं किन्नु सत्यमसत्यम् वा सा पूर्वं समुद्रगृहे दृष्टा भूयः पुनः अस्मिन् समये दृश्यते दर्शन विषयीक्रियते । एवमेव अहं उदयनः तदा समुद्रगृह प्रसंगे दृष्टयापि दृश्यमानया अनया वासवदत्तया वञ्चितः प्रतारितः अभूतमिति शेषः ॥१७॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ।

अन्वयः—मिथ्योन्मादैश्च, युद्धैश्च, शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैश्च, भवद्यत्नैश्च खलु मज्जमानाः वय समुद्धृताः ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—मिथ्योन्मादैः अवास्तविकैः चित्तविभ्रमचेष्टितैः, युद्धैश्च संग्रामैश्च शास्त्रदृष्टैश्च राजनीतिसिद्धान्तानुकूलैश्च मंत्रितैश्च गूढमन्त्रितैश्च, ईदृशैः भवद् तव यत्नैः उद्योगैः खलु निश्चयेन मज्जमानाः निमग्नाः वयं समुद्धृताः विपत्सागरात् त्वयैव निष्कासिता अमृम् ॥१८॥ अनुष्टुप् छन्दः ।

यौगन्धरायण—हे राजन् !

भरत कुल में उत्पन्न आप नम्र, ज्ञान सदाचारी (पवित्र) एवं राज्य-धर्म के पालक हैं। इसलिये मेरी बहन का बलपूर्वक हरण आपको शोभा नहीं देता ॥१६॥

राजा—अच्छा, रूप की समानता देखते हैं अर्थात् इसे देखकर बताता हूँ कि यह वासवदत्ता है कि नहीं।

घूंघट उठाइये।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—अरे ! वह यौगन्धरायण और यह महासेन की पुत्री वासवदत्ता है—

क्या यह सत्य है अथवा स्वप्न है जो मैं फिर से देख रहा हूँ क्योंकि उस समय (समुद्रगृह में) भी सोते समय दिखाई पड़ने पर भी इसने इसी तरह मुझे ठगा था ॥१७॥

यौगन्धरायण—स्वामी ! देवी को छिपाकर रखने का मैंने अपराध किया है। इसलिये महाराज मुझे क्षमा करें। (ऐसा कहकर पैरों में गिरता है।)

राजा—(उठाकर) आप निश्चित रूप से यौगन्धरायण ही हैं।

झूठा उन्माद, युद्ध शास्त्रोक्त व्यवहार एवं आपके (सफल) प्रयत्नों के द्वारा निश्चित रूप से हम डूबने से बचा लिये गये हैं ॥१८॥

यौगन्धरायण—हम (प्रजाजन) स्वामी के भाग्य का ही अनुसरण करने वाले हैं।

विशेष

पद्य १६—भारतानाम् कुले—भरत कुल में अर्थात् पाण्डव वंश में विष्णु-पुराण से यह सिद्ध होता है कि महाराज उदयन पाण्डववंशीय राजा थे। अर्जुन-पुत्र्यमिमन्योः इत्यादि।

राजधर्मदेशिक—राजधर्म के प्रवर्तक। महाराज उदयन पौराणिक कथाओं में एक अत्यन्त कुशल शासक के रूप में वर्णित हैं।

पद्य १७—किन्नु सत्यं············मया। महाराज को यौगन्धरायण और वासवदत्ता को देखकर जो आश्चर्ययुक्त हर्ष हुआ है उसका प्रतिपादन इस उक्ति में किया गया है।

यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

पद्य १८—भवद्यत्नैः—आपके बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयत्नों के द्वारा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कलाप्रिय महाराज उदयन के राज्य के वास्तविक संचालक महामन्त्री यौगन्धरायण ही थे और राज के कल्याण के लिये नीति विरुद्ध एवं लोकविरुद्ध कार्य भी सहज ही कर डालते थे। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

पद्मावती—अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानत्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि [अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये । सहीजणसमुदाआरेण अजाणंतीए अदिक्कंदो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि ।]

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति । [उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे । उट्ठेहि । अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ ।]

पद्मावती—अनुगृहीतास्मि । [अणुग्गहिदह्मि ।]

राजा—वयस्य यौगन्धरायण देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति ।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवि भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्तता मत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

राजा—न, न । सर्वं एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

भरतवाक्यम्

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्का राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥१९॥

(निष्क्रान्ता सर्वे)

इति षष्ठोऽङ्कः

अन्वयः—सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्, एकातपत्राङ्का महीम् नः राजसिंहः प्रशास्तु ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या

सागरपर्यन्तां सागराः समुद्राः पर्यन्ता अन्तिमाः सीमा यस्यास्ताम् समग्रामिति यावत् । हिमवान् हिमालयो विन्ध्यो विन्ध्याचलस्य द्वौ पर्वतौ एव कुण्डले कर्णालङ्कारौ यस्यास्ताम् । एकातपत्राङ्का एममेव आतपत्रेण चिह्नितां इमां महीम् पृथ्वीं नः अस्माकं राजसिंहः नृपतिवरः उदयनः इत्यर्थः, प्रशास्तु पालयतु इत्यर्थः ॥१९॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ।

पद्मावती—अहा ! निश्चय ही ये आर्या (वासवदत्ता) हैं। आर्ये ! अनजाने में मैंने (आपके साथ) सखी के समान व्यवहार करके शिष्टाचार का उल्लङ्घन किया है। तो सिर झुकाकर आपको प्रसन्न करती हूँ अर्थात् क्षमा याचना करती हूँ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) हे सौभाग्यवती ! उठो, उठो। धरोहर की रक्षा चाहने वाले यौगन्धरायण का यह (मेरा) शरीर रूपी धन ही अपराधी है।

पद्मावती—(मैं) अनुगृहीत हुई।

राजा—मित्र यौगन्धरायण ! देवी (वासवदत्ता) को छिपाने में आपका क्या अपराध था ?

यौगन्धरायण—(यही कि) केवल मात्र कौशाम्बी ही अब अपने शासनाधीन रह गयी थी।

राजा—अच्छा, पद्मावती के हाथ (वासवदत्ता) को धरोहर के रूप में रखने का क्या कारण था ?

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्रादि ज्योतिषियों ने ऐसा कहा था कि पद्मावती आपकी रानी होगी।

राजा—क्या यह भी रुमण्वान् को मालूम था।

यौगन्धरायण—महाराज ! (यह तो) सभी को मालूम था।

राजा—अहो ! निश्चय ही रुमण्वान् बड़ा दुष्ट है।

यौगन्धरायण—महाराज ! देवी वासवदत्ता की कुशलक्षेम कहने के लिये आज आर्य रैभ्य और आर्या वसुन्धरा को वापस भेज दिया जाये।

राजा—नहीं नहीं ! देवी पद्मावती सहित हम सभी जायेंगे।

यौगन्धरायण—जो स्वामी की आज्ञा।

भरतवाक्य

समुद्र तक फैली हुई, हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतों रूपी कुण्डल से युक्त एक ही राजक्षत्र से अङ्कित इस समस्त पृथ्वी का पालन हमारे राजसिंह उदयन करें ॥१९॥

(सब निकल गये)

छटा अङ्क समाप्त

॥ ॐ ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

प्रथम अङ्क

टिप्पणी

स्वप्नवासवदत्तम्—प्रस्तुत नाटक का यह नाम अत्यन्त सार्थक है—स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता स्वप्नवासवदत्ता तामधिकृत्य कृतं नाटकं स्वप्नवासवदत्तम् । स्वप्नवासवदत्ता । अण् "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे" सूत्र से 'अण्' प्रत्यय । इस नाटक का नामकरण पञ्चम अङ्क के स्वप्नदर्शन की सौन्दर्यमयी घटना के आधार पर किया गया है । पञ्चम अङ्क में राजा उदयन सरदर्द से पीड़ित पद्मावती को देखने के लिये समुद्रगृह में जाता है । वहाँ उसको न पाकर उसकी प्रतीक्षा करने के लिये उसकी शैय्या पर लेट जाता है । उदयन को नींद आ जाती है । इतने में वासवदत्ता पद्मावती का समाचार लेने वहाँ आती है । वह राजा को पद्मावती समझकर उसके पास लेट जाती है, परन्तु उसे पहचानकर शीघ्र ही उठ बैठती है । राजा स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है और प्रणयभरी भाषा में उससे वार्तालाप भी करता है । वासवदत्ता को शंका होती है कि उसे कहीं कोई देख न ले । अतः वहाँ से चलने लगती है । राजा भी सहसा उठकर उसके पीछे दौड़ता है, परन्तु द्वार से टकराकर रुक जाता है । प्रस्तुत नाटक में यह घटना अत्यन्त मधुर, मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक है । अतः महान् कलाकार भास ने इसी के आधार पर अपने नाटक का नामकरण किया है ।

नान्द्यन्ते—नान्द्या अन्ते । षष्ठी तत्पुरुष समास । नान्दी पाठ के पश्चात् । (क) नान्दी—नन्दन्ति देवा अत्र इति नान्दी । जहाँ देवता लोग आनन्दित होते हैं वह नान्दी है । नन्द + घञ् + ङीप् पृषोदरादित्वात् धातु के अ को वृद्धि, (ख) नन्दयतीति नन्दः, पचाद्यच—नन्द + अच् । नन्द एवं नान्दः प्रज्ञादिभ्यश्च' से अण्—नन्द + अण् + ङीप् । नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिये नान्दी अर्थात् मंगलाचरण का पाठ होता है । इस नाटक में नान्दी पाठ रङ्गमंच पर न होकर नेपथ्य में (पर्दे के पीछे) ही हुआ है । महान् कवि भास के नाटकों में यह विलक्षणता पायी है और यही विशेषता भास की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता की प्रतीक है ।

नान्दी का लक्षण—(क)—

> आशीर्वचनसंयुता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
> देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ साहित्यदर्पण ।

अर्थात् देवगण, ब्राह्मणों और राजा आदि की आशीर्वादयुक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है। अतः इसे नान्दी कहते हैं। (ख) नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः। कुशीलवा पारिषदाश्चसंतः। यस्मादलं सज्जनसिंधु हंसी तस्मादियं सा कथितेह नान्दी-ति (नाटयप्रदीप) (ग) आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः। नान्दीति कथ्यते। (आदि भरत) आशीर्वाद और नमस्कार से युक्त श्लोक नान्दी कहलाता है। नान्दी-पाठ में काव्य के कथानक का संकेत भी होना चाहिये।

सूत्रधारः सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयति इति सूत्रधारः। सूत्र + धृ + णिच् + अण्। 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय। जो रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है उसको सूत्रधार कहते हैं। सूत्रधार रंगमंच का अधिष्ठाता होता है। वह प्रस्तावना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का आरम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है।

सूत्रधार का लक्षण—(क) नाटयस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्। रंगदैवत् पूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः। बीज के साथ नाटय के अनुष्ठान को "सूत्र" कहते हैं। उसको धारण करने वाले तथा रंगमञ्च के देवता की पूजा करने वाले को सूत्रधार कहते हैं। (ख) 'सङ्गीत सर्वस्व' के रचयिता ने भी सूत्रधार का लक्षण सुरम्य रूप में किया है—'वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते, रंगभूमि समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते'। अर्थात् नाटक में होने वाली घटना को सर्वप्रथम रंगमञ्च पर आकर जो सूचित करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं। (ग) नाटयोप करणादीनि सूत्रमित्यभि-धीयते। 'सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते' नाटक के उपकरणों आदि को सूत्र कहते हैं और उसको धारण करने वाला सूत्रधार कहलाता है।

पद्य १—

(१) **उदयनवेन्दु सवर्णौ**—नवश्चासौ इन्दुः नवेन्दुः (कर्मधारयसमास) उदय-कालिकः नवेन्दुः उदयनवेन्दुः (मध्यमपदलोपीसमास), समानः वर्णः ययोस्तौ सवर्णौ। यहाँ समान को 'स' आदेश हो गया है। उदयनवेन्दुना सवर्णौ इति उदयनवेन्दु सवर्णौ (तृतीया तत्पुरुष)।

(२) **आसवदत्त बलौ**—दत्तः आसवः यस्यै सा आसवदत्ता (बहुव्रीहि) आसवदत्ता चासौ अबला आसवदत्ताबला (कर्मधारय)। अथवा आसमन्तात् बलं अबल (प्रादितत्पुरुष), आसवेन दत्तं आसवदत्तं (तृतीया तत्पुरुष) आसवदत्तं अबलं ययोस्तौ आसवदत्ताबलौ (बहुव्रीहि)। कतिपय आचार्य यहाँ—'आसवेन दत्तं अबलं—बलाभावो याभ्यां तौ—" इस भाँति समास करते हैं। आसव—आङ् उपसर्ग पूर्वक षुञ् अभिषवे धातु से "अप्" प्रत्यय।

(३) **पद्मावतीर्णपूर्णौ**—पद्मां अवतीर्णौ—पद्मावतीर्णौ, तथाविधौ च पूर्णौ पद्मावतीर्णं पूर्णौ। अथवा–पद्मस्य अवतीर्णं पद्मावतीर्णं तेन पूर्णौ पद्मावतीर्ण पूर्णौ। अवतीर्ण–अव + तृ + क्त।

(४) वसन्तकम्रौ:—वसन्त इव कम्रौ वसन्तकम्रौ (उपमति समास)
कम्र—कम् धातु से 'नमिकम्पिरस्य…' इत्यादि सूत्र से 'र' प्रत्यय।

(५) पाताम्—पा धातु लोट् लकार, प्रथम पुरुष द्विवचन ॥१॥

आर्यमिश्रान्-श्रीमानो को, सम्मानित, महानुभावों को। यह एक उपाधि है जो कि सभ्य व्यक्तियों के नाम के साथ लगायी जाती है। इसका सर्वत्र बहुवचन में ही प्रयोग हुआ है। 'विष्णुपुराण में'—मरीचि मिश्रैः दक्षेण इत्याणि रूप में इसका प्रयोग हुआ है। आर्य-अर्यते सेव्यत्वेन गम्यते इति आर्यः। वशिष्ठ के अनुसार आर्य वही है जो अपने कर्त्तव्यों को करता हुआ और अकर्त्तव्य को छोड़ता हुआ धर्म पर दृढ़ रहता है—

कर्तव्यमाचरन् कर्म ह्यकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृतावपि स वा आर्य इति स्मृतः॥

आचार्य भरत ने भी आर्य का सुन्दर लक्षण किया है—

"कुलं शील दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता।
अद्रोह इति येष्वेत्तानार्यान् सम्प्रचक्षते॥"

विज्ञापियामि—निवेदन करता हूँ। वि+ज्ञा+णिच्+पुक् आगम। यह लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन का रूप है।

अये—यह विषाद, क्रोध एवं आश्चर्य द्योतक सम्बोधनवाची अव्यय है।

अङ्ग—यह भी सम्बोधनवाची अव्यय है। यह शब्द हर्ष, संगम, असूया, सम्बोधन तथा शीघ्रता आदि विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है—

"क्षिप्रे च पुनरर्थे च सगमासूययोस्तथा।
हर्षे सम्बोधने चैव ह्यङ्गशब्दः प्रयुज्यते॥ (आप्टे कोष)

यहाँ पर यह—"बहुत अच्छा"—इस अभिप्राय को द्योतित करने वाला सम्बोधन है।

नेपथ्य का लक्षण—"कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं मुच्यते नेपथ्य।" अभिनेता जहाँ पर नाटकोचित रूप धारण करते हैं उसे नेपथ्य कहते हैं। आजकल उसी को 'ग्रीन हाउस, कहा जाता है। नेपथ्य शब्द के तीन अर्थ हैं—वेष धारण करना, वेष धारण का स्थान और पर्दा। 'आकल्पवेषो नेपथ्य प्रतिकर्म प्रसाधनम्'—इत्यजयः। "नेपथ्यं स्याज्वनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्"—इत्यमरः 'नेपथ्यं त प्रसाधनः रंगभूमो वर्षभेदे" इति हैमः।

उत्सरत—उत्+सृ। यह लोट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन का रूप है। यहाँ पर सम्भ्रम (हड़बड़ाहट) द्योतित करने के लिये इस क्रिया का दो बार प्रयोग हुआ है। घबड़ाहट' शीघ्रता तथा भय की व्यञ्जना में किसी शब्द को दो या उससे अधिक बार प्रयुक्त करने की प्रक्रिया समीचीन है—"सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टं अनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः"।

पद्य २—

(१) मगधराजस्य—मगधानां राजा मगधराजः। "राजाहः—सखिभ्यष्टच्" सूत्र से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय।

(२) कन्यानुगामिभिः—अनुगन्तुं शीलमेषां तेऽनुगामिनः, कन्याया अनुगामिनः कन्यानुगामिनस्तै कन्यानुगामिभिः। कन्या—अनु + गम् + णिनि। "धप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये"—सूत्र से ताच्छील्य अर्थ में णिनि प्रत्यय।

(३) स्निग्धै—स्निह् + क्त। तृतीया, बहुवचन।

(४) भृत्यैः—भृ + क्यप्—"ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् का आगम्।

(५) उत्सार्यते—उत्—सृ + णिच्, कर्मणि—यक्। यह लट् लकार, अन्य-पुरुष एकवचन का रूप है।

(६) जनः—इस शब्द के लोक, भुवन आदि अनेक अर्थ हैं—

'लोकस्तु भुवने जनेः—इत्यमरः ॥२॥

निष्क्रान्त—सूत्रधार उक्त प्रकार से प्रमुख सूचना देता हुआ रङ्गमञ्च से चला जाता है। निस् + क्रम् + क्तः।

स्थापना—(क) नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने प्रस्तावना, स्थापना तथा आमुख, इन शब्दों को एक ही अभिप्राय से प्रयुक्त किया है। स्थाप्यते प्रस्तूयते कथावस्तु यस्यां सा स्थापना। जिसमें नाटक की कथावस्तु स्थापित या प्रस्तावित की जाती है उसे स्थापना या प्रस्तावना कहते हैं। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ पंचानन ने भी कहा है—प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेततः अर्थात् स्थापक प्रविष्ट होकर काव्य नाटक की स्थापना करे।

(ख) नटो विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुतक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥
(साहित्यदर्पण ६/३२)

(ग) सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत् तदामुखम्॥
(दशरूपक)

अर्थात् जहां सूत्रधार नटी विदूषक एवं पारिपार्श्विक से ऐसी बातें करे, जिससे कि नाटक कथा सूचित होती हो, उसे आमुख कहते हैं और वही प्रस्तावना कहलाती है।

(घ) प्रस्तावना पांच प्रकार की होती है। यहां 'प्रवर्तक' नामक प्रस्तावना है। (कतिपय आचार्यों ने इसे 'प्रयोगातिशय' माना है)।

परिव्राजकवेष:—परित्यज्य सर्वं व्रजन्ति इति परिव्राजक: । परिव्राजकस्येव वेषो यस्य स परिव्राजकवेष: अर्थात् संन्यासी के समान वेष को धारण करने वाला ।

आवन्तिकावेषधारिणी—अवन्ति जनपदे भवा अङ्गना आवन्तिका तस्या वेषं धारयति इति आवन्तिकावेषधारिणी । आवन्तिकावेष—धृ + णिनि + ङीप् । यहाँ 'तत्रभव:' इस अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय होकर उसको 'इक्' आदेश तथा स्त्रीत्व कार्य करने पर यह रूप सिद्ध होता है ।

यौगन्धरायण—यह वत्सराज उदयन का कुशल मन्त्री था । यह उदयन को पुन राज्य प्राप्त कराने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहा । इस कार्य में मगधराज दर्शक की सहायता अत्यन्त आवश्यक थी, इसलिये यौगन्धरायण दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन की शादी कराना चाहता था । ज्योतिषियों की भी यही भविष्य-वाणी थी । परन्तु प्राणप्रिया वासवदत्ता के रहते उदयन विवाह के लिये सहमत नहीं था । अत: वासवदत्ता की स्वीकृति से एक षड्यन्त्र रचा गया । राज्य के सीमा-वर्ती लावाणक नामक गाँव में एक राजकीय पड़ाव डाल दिया गया और एक दिन उसमें आग लगवा दी गई । तदुपरान्त मन्त्रियों की योजनानुसार यह घोषणा करा दी गई कि वासवदत्ता और यौगन्धरायण लावाणक भी उस अग्नि में जल गये । उसके बाद यौगन्धरायण और वासवदत्ता वेष बदलकर मगध के एक तपोवन में पहुँच गये । यौगन्धरायण ने काषाय वस्त्र धारण किये और वासवदत्ता अवन्ति देश की स्त्रियों के वेष रहने लगी ।

वासवदत्ता—यह नाटक की प्रधान नायिका है । वासवदत्ता उदयन की पति परायणा पत्नी है । वह अनन्य सुन्दरी है ।

पद्य ३ —

(१) **धीरस्य**—धियम्—बुद्धि राति ददाति इति धीर: + क: । यहाँ षष्ठी एकवचन का रूप है ।

(२) **वन्यै:**—वने भावा वन्या: तै वन्यै:, वन + यत् । यहाँ 'तत्र भव:' अर्थ में 'यत्' प्रत्यय हुआ है ।

(३) **आश्रमसंश्रितस्य**—आश्रमं संश्रित: इति आश्रमसंश्रित: तस्य आश्रम-संश्रितस्य । यहाँ 'द्वितीया श्रीतातीत' इत्यादि सूत्र से द्वितीया 'तत्पुरुष समास' हुआ है ।

(४) **उत्सिक्त:**—सत् + सिच् + क्त । अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन करने वाला ।

(५) **विनयापेत पुरुष:**—विनयात् अपेता: पुरुषा: यस्य स विनयापेतपुरुष:, (बहुव्रीहि समास) अर्थात् अविनीत सेवकों वाला । कुछ विद्वान इसे 'कर्मधारय समास' मानते हैं ।

(६) विस्मतः—वि + स्मि + क्त । घमण्ड करने वाला कोष में स्मः शब्द 'मद' का वाची है—

"दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः ।"—

(७) निभृतम्—नि + भृ + क्त । शान्त, एकान्त ।

(८) ग्रामीकरोति—अग्रामं ग्रामं करोति । जो ग्राम नहीं है उसे बना रहा है—शान्त को अशान्त बना रहा है । ग्राम + च्वि + कृ + लट् + ति । यहाँ 'अभूत तद्भाव' अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय हुआ है ।।३।।

भवति—यह स्त्रियों के लिये सत्कारवाची सम्बोधन है । यहाँ 'भा' धातु से 'डवतु' प्रत्यय करने पर 'उगितश्च' से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीप्' हो गया है यह सम्बोधन का रूप है ।

धर्माबात्मानमुत्सारयति—इस उक्ति से तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है । उस समय तपस्या करना धर्म का एक प्रमुख अंग था और तपस्वियों के कार्य में विघ्न डालना एवं उनके साथ अभद्रता का व्यवहार करना धर्म से विमुख होना माना जाता था ।

अपि नाम—'नाम' शब्द 'सम्भावना' आदि अनेक अभिप्रायों को द्योतित करता है—

'नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः ।

वक्तुकामा—वक्तुं कामः यस्या सा वक्तुकामा (बहुव्रीहि समास) यहाँ 'वक्तुम्' में 'म्' का लोप हो गया है ।

एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते—इस उक्ति द्वारा महान् कवि ने एक सार्वभौम सत्य का उद्घाटन किया है । यह स्वाभाविक बात है कि परिचय न होने पर अनजाने में महान् से महान् व्यक्ति, यहाँ तक कि देवताओं की भी अवहेलना हो जाती है । महाकवि भास की कृतियों में इस प्रकार की उक्तियों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है । इस स्थल पर वासवदत्ता की उक्त आशंका भी स्वाभाविक है ।

दैवतानि—देव एव देवता, देवता एव दैवतम् तानि दैवतानि । देव + तल् + टाप् । देवता शब्द से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय आदिवृद्धि । प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में 'दैवतानि' रूप होता है ।

वासवदत्ता की इस उक्ति में एक गरिमा के दर्शन होते हैं । यहाँ कवि ने एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है । वस्तुतः मनस्वी शारीरिक थकावट से उतने दुखी नहीं होते जितने वह अपमान की मानसिक व्यथा से व्यथित होते हैं ।

भुक्तोज्झितः—पूर्वं भुक्तः पश्चादुज्झितः । यहाँ "मयूर व्यंसकादयः" से समास हुआ है । इस उक्ति द्वारा यौगन्धरायण वासवदत्ता को यह बताना चाहता है कि तुम पहले राज-सम्मान का उपभोग कर चुकी हो, अब उसे छोड़कर तुमने

विशेष प्रयोजन से आवन्तिका का वेश धारण कर लिया है। समय परिवर्तनशील है। उदयन की विजय होने पर तुम फिर उसी सम्मान को प्राप्त करोगी। अतः तुम्हें व्यथित नहीं होना चाहिये।

पद्य ४--

(१) पुनर्विजयेन---इससे यौगन्धरायण का आशावाद झलकता है। उसे पूर्ण आशा है कि उसके प्रयत्नों से उदयन की विजय निश्चित है और उसे अवश्य ही पुनः राज्य-प्राप्ति होगी।

(२) अभिमतम्—यह क्रिया विशेषण है।

(३) श्लाघ्यम्—यह भी क्रिया विशेषण है।

(४) परिवर्तमाना—परि—वृत्त + लट्। "लटः—शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस सूत्र में लट् को "शानच्"। तत्पश्चात् "मुक्" का आगम ॥४॥

काञ्चुकीयः—यह अन्तःपुर की रानियों के अंगरक्षक का काम करता था। यह सात्त्विक और वृद्ध ब्राह्मण होता था। कञ्चुकी नाम सम्भवतः इसलिये पड़ा है कि वह कञ्चुक (चोगा) पहनता था। यद्यपि प्रसिद्ध शब्द "कञ्चुकी" है, परन्तु भास ने 'काञ्चुकीय' शब्द का प्रयोग किया है—मातृगुप्ताचार्य ने इसका लक्षण निम्न प्रकार से किया है—

ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते मताः॥

अर्थात् जो सर्वदा सात्त्विक गुणों से युक्त, काम आदि दोषों से रहित और ज्ञान-विज्ञान में कुशल होते हैं, उन्हें काञ्चुकीय कहते हैं। नाट्यशास्त्र में कञ्चुकी का सुन्दर लक्षण उपलब्ध होता है—

अन्तःपुरचरो विप्रो वृद्धो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः काञ्चुकीत्यभिधीयते॥

अन्तःपुर में विचरण करने वाला वृद्ध, गुण-समूह से युक्त और सब कार्यों को करने में निपुण ब्राह्मण कञ्चुकी कहलाता है। कञ्चुक—शब्द से छण् प्रत्यय, 'छ' को ईय् आदेश तथा आदिवृद्धि करने से उक्त शब्द की सिद्धि होती है।

सम्भषकः—यह दो राजपुरुषों में से एक का नाम है।

न खलु न खलु—यह निश्चयार्थक अव्यय है। दो बार न का प्रयोग निषेध की दृढ़ता को द्योतित करता है।

उत्सारणा—उत्—सृ + णिच् + यच्, 'युवोरनाकौ' से यु को अन् आदेश। स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्।

पद्य ५—

(१) परिहरतु—यहाँ प्राप्त काल में लोट् लकार का प्रयोग हुआ है अर्थात् तुम्हारे इस रूक्ष व्यवहार से राजा की निन्दा का अवसर उपस्थित हुआ है। अतः तपस्वियों से कठोर व्यवहार न करो। राजा को निन्दा से बचाओ, क्योंकि सेवकों

के अच्छे बुरे आचरण का प्रभाव राजा के व्यक्तित्व पर अवश्य पड़ता है। सेवक अच्छा व्यवहार करते हैं तो उनके स्वामी की प्रशंसा होती है और बुरा व्यवहार करते हैं तो राजा निन्दनीय होता है।

(२) **मनस्विनः**—प्रशस्तं मनः येषां ते इस विग्रह में मनस् शब्द से 'अस्माया मेधास्रजो विनिः' सूत्र से विनि प्रत्यय।' प्रथमा बहुवचन का रूप है।

(३) **नगर परिभवन्**—नगरे जायमाना परिभवा नगर—परिभवास्तान् नगर परिभवान्। तपस्वी लोग स्वाभिमानी होते हैं। जहाँ उनके स्वाभिमान को धक्का लगता है, वहाँ वे रहना पसन्द नहीं करते। नगरों में अपमान की आशंका रहती है, अतः उससे बचने के लिये वह शान्त एकान्त तपोवन में निवास करते हैं ॥५॥

हन्त ?—यह एक सम्बोधन है, जो यहाँ हर्ष की अभिव्यक्ति करता है। यह विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है—'हन्त हर्षोऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयो।'

(अमरकोष।)

दर्शनम्—दृश्यन्ते ज्ञायते तत्त्वं अनया इति दर्शनम्। अर्थात् बुद्धि। दृश्+ ल्युट्+अन। दर्शन शब्द भी अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है—

'दर्शननयनस्वप्न बुद्धिधर्मोपलब्धिषु'—मेदिनी कोष।

वत्से—यौगन्धरायण उदयन का आदरणीय मन्त्री था। वह वयोवृद्ध था। अतः उसके द्वारा वासवदत्ता को 'बेटी' कहकर सम्बोधित करना समीचीन है। यह सम्बोधन स्नेह का प्रतीक है।

तावत्—यह एक अव्यय है। इसका प्रयोग कहीं सार्थक तथा कहीं केवल पदपूर्ति के लिये होते हैं।

आत्मगतम्—मन में। इसे "स्वगतम्" भी कहते हैं। जहाँ कोई कथन किसी को सुनाना अभीष्ट नहीं होता, वहाँ "आत्मगतम्" या "स्वगतम्" का प्रयोग किया जाता है। आचार्य विश्वनाथ पंचानन ने साहित्यदर्पण में इसकी परिभाषा की है— "अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्"। "स्वगत" या "आत्मगत" नाटककार की कला एवं मनोवैज्ञानिकता का प्रतीक होता है।

अपरिचयात्—यौगन्धरायण ने अभी हाल ही में तपस्वी का वेश धारण किया है। अतः 'तपस्विन्' सम्बोधन यद्यपि उसके सम्मान को द्योतित करता है, परन्तु अभ्यास न होने के कारण यह सम्बोधन कुछ अटपटा सा लगता है।

न श्लिश्यते—लोकभाषा में इसका अभिप्राय है—"नहीं जमता"—"नहीं जंचता"। श्लिष् धातु परस्मैपदी है। अतः "श्लिष्यति" प्रयोग होना चाहिये। परन्तु यहाँ भास ने आत्मनेपद (श्लिष्यते) का प्रयोग किया है। अतः यहाँ 'च्युत संस्कृति' नामक काव्यदोष है।

गुरुभिः—गुरु शब्द पिता आदि पूज्य व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होता है। "गुरुर्मत्याङ्गिरसे पित्रादौ इति हैमः।" यहाँ प्राचीन धार्मिक परम्पराओं का संकेत मिलता है। वैदिक संस्कृति में १६ संस्कारों का प्रमुख स्थान है। उनमें भी नामकरण संस्कार का अपना एक विशेष महत्त्व है। "गुरवो नामकरणं कुर्वन्ति"—इस वचन के अनुसार प्राचीनकाल में गुरु लोग नामकरण किया करते थे। राजघराने में भी यही प्रथा थी।

आश्रमस्थाम्—आश्रमे तिष्ठति या सा आश्रमस्थातां आश्रमस्थाम्। आश्रम—स्था + क + टाप्। इस पंक्ति में प्राचीन आश्रम-व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। महान् कवि कालिदास ने भी—वार्धके मुनीवृत्तीनाम् कहकर इस ओर संकेत किया है। उसी परम्परा के अनुसार राजा दर्शक की माता गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थी का जीवन व्यतीत करने के लिये आश्रम में निवास कर रही थी।

राजगृहम्—यह उस समय मगध देश की राजधानी था। कतिपय व्याख्याकारों ने इसका अर्थ राजभवन भी किया है।

आश्रमपदे—आश्रम स्थान में। पद शब्द के अनेक अर्थ हैं—"पदं व्यवसितत्राण स्थान लक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु"—अमरकोश।

पद्य ६—

(१) **तपोधनानि**—तपस्या के निमित्त द्रव्य। अर्थात् वह पदार्थ जिनका उपयोग तपस्या के लिये किया जाता है। तीर्थजल, समिधायें एवं कुश आदि यज्ञीय सामग्री के अन्दर आते हैं।

(२) **स्वैरम्**—स्वस्य ईरः गमनं इति स्वैरः। स्व + ईरः "यहाँ स्वरादीरेरिणोः" इस वार्तिक से वृद्धि हुई है। यहाँ "स्वैरम्"—क्रिया विशेषण है।

(३) **धर्मपीडाम्**—धर्मस्य पीडां बाधाम्। "पीडा बाधा" इत्यमरः।

(४) **धर्मप्रिया**—धर्म प्रियो यस्याः सा धर्मप्रिया। बहुव्रीहि समास। यहाँ "वा प्रियस्य" वार्तिक के अनुसार प्रिय शब्द का विकल्प से पूर्व प्रयोग होता है ॥६॥

पुष्पकभद्रादिभिः—पुष्पकः भद्रः आदिरेषां तैः पुष्पकभद्रादिभिः।

आदेशिकैः—आदेशः शीलं येषां इत्यादोशिकास्तैः आदेशिकैः। यहाँ 'शीलम्' इस सूत्र से ठक् प्रत्यय करने पर उक्त रूप सिद्ध होता है। ज्योतिषशास्त्र के फल को आदेश कहते हैं और उसको बताने वाला आदेशिक कहलाता है। "ज्योतिषशास्त्र फलं पुराणगणकैः—आदेश इत्युच्यते।" (सिद्धान्तशिरोमणि)

पद्य ७—

(१) **भर्तृदाराभिलाषित्वात्**—भर्तृः दारा भर्तृदारा तानभिलषतीति भर्तृदाराभिलाषी—अभि—लष् + णिनि। तस्य भावः भर्तृदाराभिलाषित्वं, तस्मात् भर्तृदाराभिलाषित्वात्। 'दार' शब्द का प्रयोग केवल पुलिङ्ग और बहुवचन में ही होता है, 'अथपुम्भूम्निदाराः इत्यमरः'।

(२) **स्वता**—स्वस्य भावः स्वता। स्व + तल् + टाप्। यहाँ 'स्व' शब्द आत्मीय अर्थ का बोधक है। स्वोज्ञातावात्मनिस्वंत्रिष्वात्मीये इत्यमरः। महान् कवि कालिदास ने भी कामी स्वतांपश्यति में इसका सुमधुर प्रयोग किया है ॥७॥

दारिका—दृ + णिच् + ण्वुल्—अक् आदेश, स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् तथा इत्व ।

भगिनिका स्नेहः—भगिनी एवं भगिनिका । भगिनी + क + टाप्, ह्रस्व । भगिनिकायाः स्नेहः भगिनिकास्नेहः । वासवदत्ता और पद्मावती दोनों राजकुमारी थीं इसलिये वासवदत्ता का पद्मावती से बहिन का सा प्रेम स्वाभाविक है ।

एतु एतु—यहाँ 'नित्यवीप्सयोः' सूत्र से वीप्सा में द्वित्व हो गया है । यह आदरसूचक है ।

भर्तृदारिका—राजा की पुत्री । राजाभट्टारकोदेवः तत्सुता भर्तृदारिका इत्यमरः ।

उपर्युक्त उक्तियों में तत्कालीन शिष्टाचार की एक झलक दृष्टिगोचर होती है । तापसी तपः सिद्धा है । उसके अन्दर एक गरिमा है । अतः वह बैठै बैठे ही राजकुमारी का स्वागत करती है । राजकुमारी भी तापसी को अभिवादन करती है और तापसी उसे दीर्घायुष्य का आशीर्वाद देती है ।

अतिथिजनस्य—यहाँ भारतीय संस्कृति साकार हो उठी है । अतिथिसत्कार भारतीय संस्कृति का आदर्श है । 'छान्दोग्योपनिषद्' में कहा है—'अतिथिदेवोभव'—अर्थात् अतिथि को देव समझना चाहिये । तापसी की प्रस्तुत उक्ति अत्यन्त गौरवमयी है । उस समय तपोवनों में दूर-दूर से आकर जिज्ञासु लोग निवास किया करते थे। आश्रम में अतिथियों का उचित सम्मान होता था ।

वासवदत्ता की—"न हि रूपमेववागपि खल्वस्या मधुरा" इस उक्ति में एक रमणीयता के दर्शन होते हैं । यहाँ पर—"यत्राकृतिस्तत्र गुणावसन्ति"—यह उक्ति चरितार्थ हो रही है । पद्मावती में शारीरिक सौन्दर्य के साथ ही प्रियवादिता आदि गुण भी विद्यमान हैं ।

भद्रे—यह सम्वोधन चेटी के लिये है । संस्कृत साहित्य में स्त्रियों के लिये भद्रे ! कल्याणी ! शुभे ! शोभने ! आदि सम्बोधनों का प्रयोग मिलता है ।

भद्रमुखस्य—भद्रं मुखं यस्य सः भद्रमुखः तस्य भद्रमुखस्य । कल्याणसूचकः मुख वाला,—अर्थात् प्रियदर्शन । यह राजा दर्शन के लिये प्रयुक्त हुआ है । साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—

"**सौम्यभद्रमुखेप्येवमधमैस्तु कुमारकाः**" अर्थात् निम्न श्रेणी के पात्र राजकुमार को सौम्य तथा भद्रमुख इत्यादि शब्दों से सम्बोधित करें । परन्तु इस दृष्टि से राजा को "भद्रमुख" कहकर सम्बोधित करने के कारण तापसी को निम्न श्रेणी में नहीं माना जा सकता । वस्तुतः उक्त सम्वोधन तापसी की महनीयता को ही द्योतित करता है । वह तपःसिद्धा होते हुये भी राजा एवं राजकुमारी को सम्मानसूचक शब्दों से सम्बोधित करती है ।

भगिनिकाम्—अनुकम्पनीया भगिनी भगिनिका तां भगिनिकाम् । यहाँ अनुकम्पा अर्थ में कन् प्रत्यय हुआ है ।

न वरयति—यहाँ तापसी पद्मावती के विवाह के विषय में पूछना चाहती है। पद्मावती की अवस्था विवाह के योग्य है। अतः तापसी द्वारा ऐसा पूछा जाना स्वाभाविक है। ईप्सार्थक 'वर' धातु से चौरादिक णिच् प्रत्यय करके प्रथम पुरुष, एकवचन में "वरयति" रूप बनता है।

आत्मीया—आत्मन इयम् पति आत्मीया। आत्मन् + छ—ईय, टाप्।

अर्हा—अर्ह + अच् + टाप्। पद्मावती सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा है। इसलिये वह तापसी की दृष्टि में महाराज प्रद्योत की पुत्रवधु होने की क्षमता रखती है।

राजकुले—यहाँ दर्शक एवं प्रद्योत दोनों के राजवंशों का संकेत है।

महत्तरे—अतिशयेन महती इति महत्तरे। महत् + तरप्। महनीयता एवं उदात्तता में दोनों वंश समान हैं। अतः दोनों के वैवाहिक सम्बन्ध वाञ्छनीय हैं। वस्तुतः परस्पर दो समान वंशों के सम्बन्धी प्रशंसनीय होते हैं। कहा भी है—

यथोरेवसमंवित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्रीविवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥

आत्मानमनुग्रहीतुम्—यहाँ पद्मावती की दानशीलता सूचित होती है। वह दान देकर स्वयं को कृतार्थ समझती है, दान लेने वाले को नहीं। पद्मावती प्रत्युपकार की भावना से दान नहीं देना चाहती और वस्तुतः सर्वोत्तम दान वही है जो प्रत्युपकार की भावना से रहित होकर दिया जाय। गीता में भगवान् कृष्ण नें कहा है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विन्दुः॥

पद्य ८—

(१) फलशेन—यहाँ "अध्ययनेन वसति" की भाँति "हेतौ" सूत्र से तृतीया हुई है। क्योंकि फल भी हेतु माना जाता है।

(२) यथानिश्चितम्—निश्चय एवं निश्चितम् भाव में क्त प्रत्यय। निश्चित-मनतिक्रम्य यथा निश्चितम्। अव्ययीभाव समास।

(३) गुरोः देयम्—यहाँ "राज्ञः करं ददाति" की भाँति सम्बन्ध सामान्यमात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इसका अभिप्राय है—गुरुदक्षिणा।

(४) समीप्सितम्—सम् + आप् + सन् + क्त॥८॥

दिष्टया—यह हर्षवाची अव्यय है। "दिष्टया समुपजोषं चेत्यानन्दे" इत्यमरः। याचक का मिलना—पद्मावती अपना सौभाग्य समझती है।

प्रोषितभर्तृकाम्—प्रोषितो भर्ता यस्यास्ताम्। (बहुव्रीहि समास)। जिसका पति परदेश गया हो उस स्त्री को प्रोषितभर्तृका कहते हैं। इसका लक्षण साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ पंचानन ने किया है—

नाना कार्यवशाद्यस्या दूरदेश गतः पतिः।
सामनोभव दुखार्ताभवेत्प्रोषितभर्तृका॥

प्रोषितः—प्र—वस् + क्त, दूरागम तथा सम्प्रसारण। भर्तृका यहाँ "नद्युतश्च" से कप् प्रत्यय और टाप्।

कञ्चित्कालम्—यहां "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" सूत्र से द्वितीया हुई है।

परिपाल्यमानाम्—परि—पाल + णिच् + लट्। तत्पश्चात् शानच्, यक् और मुमागम। स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्।

पद्य ९—

(१) **अर्थैः भोगैः वस्त्रैः**—इन तीनों शब्दों में फल को भी हेतु मानकर 'हेतौ' सूत्र से तृतीया का प्रयोग हुआ है।

(२) **काषायाम्**—कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायाम्। कषाय शब्द से "तेन रक्तं रागात्" इस सूत्र के अनुसार अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि। "काषायं" का अर्थ है गेरुआ वस्त्र, अर्थात् संन्यासी वेष।

(३) **धीरा**—विदुषी। "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कवि" इत्यमरः।

(४) **चारित्रम्**—चर्यते अनेन इति चारित्रम्। चर् धातु "अर्तिलू धूर वन सहचर इत्तः सूत्र के अनुसार इत्त प्रत्यय। पुनश्च—चरित्रमेव चारित्रम्" इस अर्थ में अण् प्रत्ययः वृद्धि॥८॥

व्यपाश्रयणा—आश्रय-प्राप्ति की इच्छा। वि—अप्—आश्रि + युच्, अनादेश तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्।

पद्य १०—

(१) **दातुं भवेत्**—यहाँ शक् धृषज्ञाग्ला ...... इत्यादि सूत्र के अनुसार अस्त्यर्थ में 'तुमुन्' प्रत्यय हुआ है।

(२) **प्राणाः**—प्राण शब्द का प्रयोग सदा पुल्लिङ्ग और बहुवचन में ही होता है—'पुंसि भूम्न्य सवः प्राणाः—

(३) **सुखम्**—सुखपूर्वक, अनायास। यह क्रिया विशेषण है॥१०॥

अनुरूपम्—रूपस्य योग्यं अनुरूपम्। 'अव्ययं—विभक्ति...' इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास। महान् व्यक्ति एक बार स्वीकार की हुई बात का पालन करते हैं—अङ्गीकृतं सुकृतिनः—परिपालयन्ति। पद्मावती में इस उक्ति की चारितार्थता दृष्टिगोचर होती है। अपने वचन का पालन करना उसके उच्चकुल एवं सुन्दर रूप के योग्य ही है।

सत्यवादिनी—सत्यं वदितुं शीलां यस्याः सा सत्यवादिनी। सत्य—वद + णिनि + ङीप्। चेटी की यह उक्ति पद्मावती के चरित्र पर प्रकाश डालती है। पद्मावती धर्मपरायण एवं सत्यवादिनी है। वह अपने वचन का पालन करने में तत्पर है। यद्यपि यौगन्धरायण के अद्भुत् न्यास की रक्षा एक अत्यन्त कठिन कार्य है, फिर भी वह पीछे नहीं हटती।

चिरं जीवतु—दासी होने के कारण यद्यपि चेटी का यह आशीर्वाद समीचीन सा प्रतीत नहीं होता परन्तु क्योंकि वह पद्मावती की सखी के समान थी। अतः आनन्दातिरेक में उसका यह मानसिक उद्गार स्वाभाविक है।

हन्त—यह हर्षसूचक अव्यय है। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः'-इत्यमरः।

अर्धमवसितम् भारस्य—आधा बोझ समाप्त हो गया। यह मुहावरा है। समान अंशवाची अर्धशब्द नित्य नपुंसकलिङ्ग है। 'अर्ध समेऽशके'— इत्यमरः।

अवसितम्—अव पूर्वक 'षो'—अन्त कर्मणि धातु से क्त प्रत्यय, तथा 'द्यतिस्यति' इत्यादि सूत्र द्वारा इत्व करने पर उक्त शब्द सिद्ध होता है।

उपनयत—उप—नी + लट्—शतृ। यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से लट् हुआ है।

पद्य ११—

(१) महिषी—कृताभिषेका पत्नी—पटरानी—'कृताभिषेका'—'महिषी'—इत्यमरः।

(२) भवित्री—भविष्यत् के अर्थ में भू धातु से 'तृच्'—प्रत्यय और ऋदन्तत्वात् ङीप्।

(३) तत्प्रत्ययात्—तेषु प्रत्ययः तत्प्रत्ययः तस्मात्। सिद्धों के वचन पर विश्वास करने के कारण। पुष्पकभद्रादि ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि 'उदयन का राज्यनाश होगा।' आरुणि ने उदयन पर चढ़ाई कर उसका राज्य छीन लिया। अतः उक्त भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। अब उन्होंने कहा है कि—पद्मावती उदयन की महाराणी होगी। यौगन्धरायण को सिद्धों की उक्त वाणी पर पूरा विश्वास है। इसी विश्वास का अवलम्बन लेकर उसने वासवदत्ता को पद्मावती के पास न्यासरूप में रख दिया है। क्योंकि पुनः राज्य-प्राप्ति होने पर जब वासवदत्ता और उदयन का मिलन होगा तो वासवदत्ता के चरित्र की पवित्रता—के लिये पद्मावती का साक्ष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा ॥११॥

पद्य १२—

(१) पुष्पफलैः—पुष्पाणि च फलानि च पुष्पफलानि तैः पुष्पफलैः (इतरेतर योग द्वन्द्व समास)। अथवा पुष्पसहितानि फलानि पुष्पफलानि तैः पुष्पफलैः (मध्यमपदलोपी समास)।

(२) कपिलानि—कपिला गाय का दर्शन बहुत पवित्र माना गया है। वह पिंगल वर्ण या पीले रंग की होती है—'कडारः कपिलः पिंग पिशंगौ' इत्यमरः।

(३) गोकुलधनानि—गवां कुलानि गोकुलानि, गोकुलानि धनानि इव इति गोकुलधनानि : यहाँ 'उपमितं व्याघ्रादिभिः' सूत्र द्वारा 'उपमित समास' हुआ है।

(४) भूयिष्ठम्—यह क्रिया विशेषण है। यहाँ सन्ति क्रिया का आक्षेप किया गया है। बहु शब्द से अतिशय अर्थ मे 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' सूत्र से 'इष्ठन्' प्रत्यय, 'इष्ठस्य यिट् च' सूत्र द्वारा 'बहु' शब्द को भू आदेश और यिट् का आगम करने पर 'भूयिष्ठ' शब्द सिद्ध होता है।

(५) अक्षेत्रवत्यः—क्षेत्र + मतुप्—नञ् समास ॥१२॥

अये—यह आश्चर्य तथा शंकासूचक अभ्यास है। ब्रह्मचारी जब नागरिक वेष में कञ्चुकी को देखता है तो उसे स्वाभाविक रूप से यह शंका पैदा हो जाती है कि यह तपोवन है या नहीं।

स्त्रीजन:— ब्रह्मचारी पद्मावती वासवदत्ता आदि स्त्रियों को देखकर वहाँ जाने में संकोच करता है।

स्वैरं-स्वैरं—निःशङ्क—स्वच्छन्द। ब्रह्मचारी प्रवेश करने में संकोच करता है। यह देखकर कञ्चुकी उसे निर्भय होकर प्रवेश करने के लिये उत्साहित करता है।

सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम—यह मुहावरा है। आश्रम का द्वार सबके लिये खुला है। वह सब व्यक्तियों के लिये एक समान है। वहाँ तपस्वियों के अतिरिक्त अन्य आगन्तुक भी बिना भेदभाव के प्रवेश कर सकते हैं। अतः ब्रह्मचारी को वहाँ स्त्रियों को देखकर संकोच नहीं करना चाहिये।

—"सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम" से आगे की टिप्पणियाँ—

हम्—यह असम्मतिसूचक अनुकरण शब्द है।

सुपरिपालनीय—सरलता से पालन करने योग्य। पद्मावती की इस उक्ति में वासवदत्ता के चरित्र की एक झलक मिलती है। वासवदत्ता परपुरुष का मुँह तक नहीं देखना चाहती। ऐसी पवित्रता के चरित्र की रक्षा कठिन नहीं।—इसका यह अभिप्राय भी हो सकता है—'मेरी धरोहर का पालन भली-भाँति होना चाहिये। उसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं होना चाहिये।'

अतिथिसत्कारः—अतिथिसत्कार भारतीय संस्कृति का आदर्श है। भारतीय समाज में अतिथि का बहुत ऊँचा स्थान है। अतिथि को साक्षात् देवतुल्य कहा गया है—"अतिथि देवो भव।"

राजगृहातः—राजभवन से। कतिपय आचार्यों की दृष्टि में "राजगृह" नगर विशेष का नाम है। यहाँ राजगृह शब्द "अपादाने चाहीयरुहोः" सूत्र द्वारा तसिल् प्रत्यय हुआ है।

वत्सभूमौ—वत्सराज उदयन के राज्य में।

उषितवान्—वस् धातु से "वसतिक्षुधोरिट्" सूत्र द्वारा इट्, यजादित्वात् व को उ सम्प्रसारण यहाँ कर्ता में क्तवतु प्रत्यय करने पर उक्त बनता है।

नवीकृतः—अनवोऽपि नवः कृतः नवीकृतः। यहाँ अभूततद्भाव अर्थ में "च्वि" प्रत्यय हुआ है।

अथ—यहाँ "अथ" शब्द प्रश्नवाचक है। "अथ" शब्द के अनेक अर्थ हैं—

'मंगलान्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथोऽथ' इत्यमरः।

अनवसिता—अव्—षोऽन्तः कर्मणि धातु से कर्ता में क्त, स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्—इट्—अवसिता। नञ् समास में तस्मान्नुडचि' सूत्र द्वारा नुट् करने पर अनवसिता रूप बनता है।

दारुणम्—भीषण। 'दारुणं भीषण भीषणम्' इत्यमरः। **व्यसनम्**—विपत्ति। 'व्यसनं विपदि भ्रंशे' इत्यमरः।

अभ्यवपत्तुकामः—अभ्यवपत्तुं काम यस्य स अभ्यवपत्तुकामः। 'यहाँ तुं काममनसोरपि सूत्र द्वारा मकार का लोप हुआ है। 'अभ्यवपत्ति' का अर्थ है—'विपत्ति में सहायता करना।' 'व्यसन—साहाभ्यमभ्यवपत्तिः'—कौटिल्य अर्थशास्त्र।

आर्यपुत्रस्य—यहाँ वासवदत्ता ने अपने पति उदयन के लिये 'आर्यपुत्र' शब्द का प्रयोग किया है। भरतमुनि का कथन है कि स्त्री पति को आर्यपुत्र कहे—'सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्यः आर्यपुत्रेति यौवने'। अर्यते सेव्यत्वेन गम्यते इति आर्यः—सेवा के योग्य या उपासनीय। आर्यपुत्र में 'आर्य' का भाव है 'श्वसुर',—उसका पुत्र आर्यपुत्र अर्थात् पति।

सानुक्रोशत्वम्—दयालुता। अनुक्रोशो दया, तेन सहितः सानुक्रोशः। सानुक्रोशस्य भावः सानुक्रोशत्वम्।—'कृपादयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि'—इत्यमरः।

सकामः—सफलमनोरथ। यह वासवदत्ता का यौगन्धरायण के प्रति उपालम्भपूर्ण उद्गार है क्योंकि वासवदत्ता को उदयन से अलग करने में यौगन्धरायण का ही विशेष हाथ था। कामेन सह सकामः। यहाँ सह शब्द समृद्ध्यर्थक है। 'वोपसर्जनस्य' सूत्र द्वारा यहाँ सह को स आदेश हो गया है। काम शब्द के अनेक अर्थ है—'कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' इत्यमरः।

अथ किम्—और क्या,—अर्थात् हाँ यह मुहावरा है। यहाँ पद्मावती के कथन के दृढ़ समर्थन करने के लिये इसका दो बार प्रयोग हुआ है।

दिष्ट्या—सौभाग्य से। यह भी एक प्रकार का मुहावरा है। यह अव्यय है। संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग बहुलता से मिलता है।

पद्य १३—

(१) तादृशाः—यहाँ तदुपपद ज्ञानार्थक दृश् से कन् प्रत्यय हुआ है।

(२) चक्रवाकाः—चकवे। चकवा पक्षी के विषय में यह प्रसिद्धि है कि वह प्रतिदिन रात्रि में अपनी प्रिय चकवी से बिछुड़ जाता है। वासवदत्ता से वियुक्त उदयन की विरह-वेदना इतनी तीव्र है कि विरह से चकवे भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

(३) स्त्री विशेषैः—महान् कवि ने यहाँ इतिहास प्रसिद्ध सीता-शकुन्तला आदि उन स्त्रियों की ओर संकेत किया है कि जिनके विरह में राम-दुष्यन्तादि ने अत्यन्त तीव्र वेदना का अनुभव किया था। वासवदत्ता के विरह में उदयन की वेदना उनसे भी अधिक है। धन्या—धनं लब्धा धन्या 'धनगणं लब्धा'—से यत् प्रत्यय। वस्तुतः वह स्त्री धन्य है जिसे उसका पति उदयन की भाँति प्राणों से भी अधिक प्यार करता है ॥१३॥

पद्य १४—

(१) **प्रततरुदितक्षाममुखम्**—निरन्तर रोने से मलिन मुख वाला। यहाँ 'रुदितम्'—में भाव क्त प्रत्यय हुआ है। क्षामम्' शब्द में क्षै धातु से क्तप्रत्यय होकर 'क्षायो मः' सूत्र द्वारा म हो गया है।

(२) **संस्कारम्**—स्नानादि से उत्पन्न शुद्धि को (धारण करता हुआ)। **संस्कारो मार्जनं मृजा।'—अमरकोष**

(३) **दिवा**—दिन में। यह दिनवाचक दिवा शब्द अव्यय है।॥१४॥

पद्य १५—

(१) **सविश्रमः**—वि + श्रम् धातु से घञ् प्रत्यय। यहाँ 'नोदात्तोपदेशस्य' इस पाणिनीसूत्र द्वारा वृद्धि का निषेध हो जाता है और विश्राम शब्द बनता है। विश्रमेण सहितः इस विग्रह में समास होकर सविश्रमः हो गया है।

(२) **प्रसक्त**—प्र + सज् + क्त। यहाँ धातु के अकर्मक होने के कारण कर्ता में क्त प्रत्यय हुआ है।

(३) **हि**—यह अव्यय है, इसका प्रयोग हेतु तथा अवधारण अर्थ में होता है—'हि हेतावधारणे' कोष। यहाँ पूर्वार्ध का हि—'निश्चयार्थक' है और उत्तरार्द्ध का हि-हेत्वर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(४) **नराधीपः**—नराणामधिपो नराधिपः—'राजा।' ॥१५॥

हसितम्—यहाँ भाव में क्त प्रत्यय है और इसीलिये यह नपुंसकलिंग है। इसी भाँति—'कथितम्' 'पर्युषितम्'—'कुपितम्' तथा 'शयितम्' में यही प्रक्रिया है।

प्रोषित नक्षत्र चन्द्रमिव नभः—प्रोषितानि नक्षत्राणि चन्द्रश्च यस्मात्तत् नभ इव। नक्षत्र एवं चन्द्रमा जिससे अस्त (प्रोषित) हो गये हैं। ऐसे आकाश की भाँति वह लावाणक ग्राम राजा एवं मन्त्रियों के चले जाने पर सौन्दर्य विहीन हो गया। यहाँ गाँव को आकाश, राजा को चन्द्र तथा मन्त्रियों को नक्षत्र बताया गया है।

पद्य १६—

(१) **वासोपेता**—यहाँ 'वासमुपेताः, वासोपेताः, तथा 'वासेनोपेता' इस रूप में क्रमशः द्वितीया तत्पुरुष तथा तृतीया तत्पुरुष की प्रक्रिया समीचीन है। 'उपेता' में उप पूर्वक 'इण्' गतौ धातु से क्त प्रत्यय हुआ है।

(१) **अवगाढः**—अव् पूर्वक गाह धातु से क्त—प्रत्यय।

(२) **मुनिवनम्**—मुनीनां वनं मुनिवनम्।

(३) **परिभ्रष्टः**—परि + भ्रंश + क्त।

(४) **संक्षिप्तीकरणं**—संक्षिप्ताः किरणाः येन सः,

व्यावर्त्य—वि + आङ् + वृत् + णिच् + ल्यप् ॥१६॥

———

द्वितीय अङ्कः

कुञ्जरिके कुञ्जरिके—कुञ्जरिका किसी दासी का नाम है जो पद्मावती की प्रिय दासियों में से है और ऐसा प्रतीत होता है कि उसे पद्मावती की प्रत्येक गतिविधियों का पूर्ण पता रहता है। सम्वाद में नाम की पुनरावृत्ति शीघ्रता को द्योतित करती है।

कुत्र, कुत्र—इससे पद्मावती के दर्शन की उत्कण्ठा व्यक्त होती है। ऐसा आभास होता है कि दासी पद्मावती को कोई अत्यन्त शुभ समाचार सुनाने के लिये उत्कण्ठित है। इसी शीघ्रता मिश्रित उत्कण्ठा का प्रदर्शन करने के लिये 'कुत्र' शब्द का उच्चारण दो बार किया गया है।

किं भणसि—क्या कहती हो ? यह, दासी स्वयं ही कहती है। यह वाक्य प्रश्न की उत्तरप्राप्ति की सूचना देता है। सम्वाद में एषा…………से प्रारम्भ होने वाला वाक्य ही उत्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रक्रिया को 'आकाश-भाषित' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जहाँ दूसरे पात्र के दृष्टिगोचर न होने पर भी उसकी बात सुनने का अभिनय करके उपस्थित पात्र स्वयं ही प्रश्न का उत्तर दे देता है, उसे 'आकाशभाषित' कहते हैं। महान् लक्षणकार विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ में 'आकाशभाषित' का निम्न लक्षण प्रस्तुत किया है—'किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवाऽनुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥'

माधवीलतामण्डपस्य—माधवीलताया वासन्त्याः, 'वासन्ती माधवीलता' इत्यमरः मण्डपं निकुञ्जं तस्य माधवीलतामण्डपस्य। माधवीनाम्नीपुष्पलतया आवृत्तः स्थानमिति भावः। माधवी नाम की पुष्पलता से घिरे मण्डप अर्थात् स्थान के समीप।

उत्कृतकर्णचूलिकेन—उत्कृते ऊर्ध्वं कृते, कर्णचूलिके कर्णाभरणविशेषौ यत्र मुखे तथाभूतेन। कन्दुक-क्रीडा के समय बाधा न उत्पन्न कर सकें इसलिए पद्मावती ने अपने कर्णाभूषणों को ऊपर की ओर उठाकर स्थित कर दिया था।

व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन—व्यायामात् कन्दुकक्रीडाश्रमात् सञ्जाताः समुत्पन्नाः ये स्वेदबिन्दवः घर्मोदकस्य पृषताः, 'घर्मोनिदाघः स्वेदः स्यात् पृषन्ति विन्दुपृषताः' इत्यमरः तैः सौन्दर्यवैशिष्ट्यं प्रापितेन। यह कन्दुकक्रीडा में रत राजकुमारी पद्मावती के मुख की विशेषता प्रकट करता है। अतः विशेषण है। गेंद खेलने से क्लान्त पद्मावती के मुखमण्डल पर जो पसीने की बूंदें दृष्टिगोचर हो रही हैं वे पत्र रचना की शोभा धारण किये हुए हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई पसीने की बूंदें भी पद्मावती के मुख की शोभा ही बढ़ा रही हैं। इससे पद्मावती का अपूर्व सौन्दर्य प्रकट होता है।

परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन—परिश्रान्तं परिश्रान्तिः, भावोक्तः, रमणीयं सुन्दरं, दर्शनं अवलोकनं यस्य तादृशेन। अभिप्राय यह है कि परिश्रम से मुख पर मालिन्य का दर्शन होना चाहिये था किन्तु इसके विपरीत पद्मावती का मुख रमणीय ही दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे उसका स्वाभाविक सौन्दर्य व्यक्त हो रहा है।

मुखेन—मुखेन वदनेन। यहाँ 'इत्थं भूतलक्षणे' से तृतीया विभक्ति हुई है।

प्रवेशक—संस्कृत नाटकों में प्रवेशक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दो अङ्क के बीच पात्र की उक्ति द्वारा जहाँ किसी प्रमुख पात्र के आगमन की सूचना दी जाय उसे 'प्रवेशक' कहते हैं। प्रवेशक का लक्षण प्रस्तुत करते हुए विश्वनाथ ने कहा है– 'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विश्वकम्भके यथा।' दशरूपककार धनञ्जय ने भी निम्न शब्दों में प्रवेशक का लक्षण किया है—'तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः॥' यहाँ दासी के मुख से नाटक की नायिका पद्मावती के आगमन की सूचना प्रथम अङ्क के अन्त में तथा द्वितीय के प्रारम्भ में दी गई है। अतः इसकी प्रवेशक संज्ञा है।

हला—यह अव्यय है जो सम्बोधन सूचित करता है। इस प्रकार का सम्बोधन सखी के लिये किया जाता है। 'हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटी सखीं 'प्रति' इत्यमरः।' यहाँ वासवदत्ता ने पद्मावती के प्रति निकटतम सम्बन्ध प्रदर्शित करते हुए 'हला' शब्द से सम्बोधित किया है 'यह तुम्हारी गेंद है' इस वाक्य का तात्पर्यार्थ है कि वासवदत्ता ने अपनी बारी को समाप्त कर लिया है और फिर गेंद पद्मावती को देना चाहती है।

एतावत्—यह शब्द देर तक होने वाली कन्दुक-क्रीड़ा को व्यक्त करता है।

क्रीडित्वा—यहाँ क्रीड् धातु से हेत्वर्थ में 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है। क्रीडित्वा-खेलित्वा अर्थात् खेलकर (खेलने से)।

अधिक सञ्जातरागौ—अधिकम् अत्यन्तम्, सञ्जात उत्पन्नो रागो रक्तिमा ययोस्तौ-इति हस्तयोर्विशेषणम् अर्थात् कन्दुक-क्रीड़ा में रत पद्मावती का हाथ अत्यन्त लाल हो गया है। वासवदत्ता 'परकीयौ' शब्द के प्रयोग से नाटक की सर्वप्रमुख घटना (पद्मावती के पाणिग्रहण) की ओर संकेत करती है। अभिप्राय यह है कि पद्मावती के हाथ जो गेंद खेलने क्लान्त हो चुके हैं वे मानो दूसरे आदमी के हाथ जैसे प्रतीत हो रहे हैं जिनसे कोई भी अपना कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। लक्ष्यार्थ से ऐसा अर्थ निकलता है कि रंगे हुए पद्मावती के हाथ अब दूसरे के हो गये हैं। महान् कवि कालिदास ने भी—'अर्थो हि कन्या परकीय एव।' से इसकी पुष्टि की है। वासवदत्ता में उत्पन्न सपत्नी की ईर्ष्या का आभास भी प्रस्तुत उक्ति में मिलता है।

क्रीडतु क्रीडतु--पौनः पुण्य के अर्थ में यह द्वित्व का प्रयोग किया गया है। कुँआरेपन की स्वच्छन्दता एवं अल्हड़ता का बोध इससे कराया गया है।

कन्याभावरमणीयः कालः - कन्याभावेन-बाल्येन, कौमार्येण इत्यर्थः, रमणीयः सुन्दरः यः कालः सः कन्याभावरमणीयः कालः। भाव यह है कि बालोचित लीलाओं को करती हुई राजकुमारी अपनी किशोरावस्था को समाप्त करें। दासी की इस उक्ति से स्पष्ट है कि राजकुमारी के स्वच्छन्द विचरण का समय जो अब समाप्तप्राय है, आनन्दपूर्वक बीते, क्योंकि निकट ही वह समय है जब राजकुमारी प्रणयसूत्र में बँध जायेगी और उस समय यह सारी चपलता समाप्त हो जायेगी।

अधिकमद्यशोभते--वासवदत्ता की इस उक्ति में, 'जिसका अर्थ आज अधिक सुन्दर लग रहा है' कर्त्तव्यपालन का आभास मिलता है। वासवदत्ता को सर्वदा उसके स्वामी उदयन का उत्कर्ष अपेक्षित है जो राजकुमारी पद्मावती के साथ विवाह हो जाने पर ही सम्भव है। इसीलिये वासवदत्ता पद्मावती के मुख-छवि की प्रशंसा करके उसके मनोभावों को जाग्रत करने का प्रयास करती है। पद्मावती के मनोभावों को छेड़कर उसके तुरन्त बाद वर की ओर संकेत करना इसी अभिप्राय की पुष्टि करता है।

सानुक्रोश—अनुक्रोशो दया, 'कृपादयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि' इत्यमरः तेन सहितः सदय, दयालुरित्यर्थः। नाटक के नायक उदयन का प्रथम परिचय उसके गुणों के वर्णन के साथ कराया गया है। उदयन एक धीरललित नायक है। इस प्रकार के नायक दयालु प्रकृति के होते हैं। उदयन इसकी साकार प्रतिमा है।

एवमुन्मादित—उन्मत्ततां प्रापितः उत्पूर्वाण्णिजन्तान्मदेः क्त। 'उन्मादित किया गया हुआ' यह अभिप्राय है। कहने का तात्पर्य यह है कि उदयन के गुणों से अनायास ही लोग प्रभावित हो जाते थे। उदयन की पत्नी वासवदत्ता भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकी है।

दर्शनीय एव---दर्शन करने योग्य। महाकवि भास ने वासवदत्ता से उदयन के लिये 'दर्शनीय' शब्द का प्रयोग कराकर भारतीय संस्कृति की रक्षा की है। पति-पत्नी के लिये देवता स्वरूप होता है और आर्य संस्कृति में पत्नी, पति का दर्शन कर अपना जीवन सफल मानती हैं। भारतीय जीवन के उस रूप की ओर संकेत कर कवि ने आर्य-संस्कृति को गौरव प्रदान किया है। 'एव' का प्रयोग दर्शनीयता को निश्चितता प्रदान करने के लिये किया गया है।

आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः—आर्यपुत्रस्य उदयनस्य पक्षपातः प्रेम तेन करणीभूतेन, समुदाचारः कर्त्तव्यमिति यावत्. अतिक्रान्त उल्लङ्घितः। आर्यपुत्र उदयन का सम्बोधन है। वासवदत्ता को उदयन के प्रति प्रेम स्वाभाविक है। पति की निन्दा उसके लिये असह्य है, इसीलिये उदयन की कुरूपता का प्रतिवाद करते हुए वासवदत्ता ने 'दर्शनीय एव' इस प्रकार के अपने दृढ़ एवं पक्षपातपूर्ण वचनों का प्रयोग किया है। नाटककार द्वारा पक्षपात शब्द के प्रयोग द्वारा इसी अभिप्राय की अभिव्यक्ति होती हैं।

न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः—उज्जयिन्याः उज्जयिनीवासिनामुपलक्षणात् दुर्लभः दुष्प्रापः (न खलु एष राजा)। उज्जयिनी वासियों के लिये दुर्लभ नहीं अर्थात् सुलभ। महाराज उदयन की लोकप्रियता का आभास इससे मिलता है। इसी से यह भी सिद्ध होता है कि राजा उस समय सर्वसाधारण था। उस समय की सामाजिक व्यवस्था एवं शासन-प्रणाली का भी आभास प्रस्तुत सम्वाद में प्राप्त होता है।

सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम—महाकवि भास की प्रस्तुत उक्ति मानव जीवन-दर्शन की झांकी प्रस्तुत करती है। वस्तुतः सौन्दर्य मन को सर्वदा आकृष्ट करने वाला होता है। सुन्दरता मनोमुग्धकारिणी होती है जिसमें मनुष्य खो जाना चाहता है, आनन्दातिरेक में डूब जाना चाहता है। यही कारण है कि ब्रह्म के स्वरूप में सौन्दर्य का प्रमुख स्थान है। इस प्रकार प्रस्तुत उक्ति सारगर्भित होते हुए जीवन की एक बहुत बड़ी वास्तविकता को भी प्रकट करती है।

अत्याहितम्—महद्भयम्, अत्याहितं महाभीति, रिति कोषः। महान् भय। वासवदत्ता उदयन की पत्नी है। पति-पत्नी का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। वासवदत्ता का जीवन उदयन द्वारा पद्मावती को ग्रहण कर लेने से कष्टमय हो गया है, इसलिये वासवदत्ता के मुँह से अनायास ही 'अत्याहितम्' शब्द निकल पड़ा।

आगमप्रधानानि..........महापुरुषहृदयानि भवन्ति:—आगमः शास्त्रम्, प्रधानं मुख्यो येषु तानि आगमप्रधानानि। सुलभं सुसम्भवं सुकरमिति यावत् पर्यवस्थानम्—विकारपरित्याग द्वारा स्वरूपेणावस्थितिः येषां तानि सुलभपर्यवस्थानानि, महापुरुषहृदयानि—महात्मनादारप्रकृतीनां चेतांसि, भवन्ति जायन्ते। भारतीय शास्त्रों का भारतीय संस्कृति के निर्माण में प्रमुख स्थान रहा है। शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय है जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध एवं संसार का वास्तविक स्वरूप निर्धारण कर मोक्ष की प्राप्ति के लिये मानव उद्बोधित करना। मनुष्य को जब सांसारिक असारता का ज्ञान हो जाता है, उस समय उसके समक्ष यह जीवन एक अभिनय-सा प्रतीत होने लगता है और जीवन सम्बन्धी प्रत्येक घटनाएँ उसके लिये अवास्तविक हो जाती हैं। इस प्रकार यह उक्ति जहाँ एक ओर शास्त्रों की गरिमा व्यक्त करती है दूसरी ओर नाटक के नायक उदयन को शास्त्रज्ञ एवं महान् पुरुष के रूप में भी चित्रित करती है।

वरिता—ग्रहण की गई। ईप्सार्थक चुरादिगणीय वर् धातु से 'क्त' प्रत्यय होने पर इस पद की सिद्धि होती है। कहीं कहीं 'वृत्ता' पाठ भी मिलता है। इसकी सिद्धि वृ + क्त + टाप्। इस प्रकार से होती है। अर्थ दोनों का एक ही है।

अभिजनः—अभिजनः कूलम्, 'सन्ततिर्गोत्रजनन कुलान्यभिजनान्वयौ' इति कोषः। अभिप्राय है—उच्चकुल में उत्पन्न हुए।

विज्ञानम्—विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्। वीणावादनानि एवं विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण। यह उदयन का विशेषण है। 'विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' इत्यमरः। उदयन के गुणों की व्याख्या प्रस्तुत करके महाकवि भास ने भारतीय वर के आवश्यक गुणों की ओर निर्देश किया है। वर के आवश्यक गुणों को निम्नोक्ति द्वारा बताया गया है—'कुल च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च'। उदयन में उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हैं, इसीलिये महाराज ने पद्मावती को उदयन के लिये समर्पित कर दिया है।

शोभनं नक्षत्रम्—शोभनं उत्तमम् नक्षत्रं नक्षत्रस्थितिः (वर्तते)। नक्षत्र से अभिप्राय शुभ तिथि एवं लग्न आदि से भी है। ज्योतिष में विवाह के लिये शुभ नक्षत्र की गणना निम्न प्रकार से की गयी है—'रेवत्युत्तररोहिणी मृगमघामूलानुराधाकर-स्वातीषु प्रमदा तुलामिथुनके लग्ने विवाहः शुभः। मासाः फाल्गुनमाघमार्गशुचयो ज्येष्ठस्तथा माधवः शास्त्राः सौम्यदिन तथैव तिथयोरिक्ता कुहूवर्जिताः'।

कौतुकमङ्गलम्—वैवाहिक मङ्गलोचितं मङ्गलसूत्रम्। विवाहमङ्गलसूत्र बन्धनरूपं शुभकार्यमित्यर्थः। यह एक विशेष विधि है जो विवाह के पहले सम्पन्न की जाती है। मध्यमपदलोपी समास।

भट्टिनी—आकृताभिषेका दर्शकस्य राज्ञः पत्नी। 'देवीकृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी' इत्यमरः।

तृतीय अङ्क

विवाहामोदसङ्कुले—विवाहस्य पद्मावती परिणयस्य, आमोदः आनन्दः तेन सङ्कुले परिपूर्णे अर्थात् विवाहोत्सवानन्दसन्दोहमग्नैर्बान्धवजनैः परिपूर्णे। विवाहोत्सव में आनन्दपूर्वक भाग लेने वाले बन्धु-बान्धवों से परिपूर्ण राजमहल। यह शब्द 'अन्तः पुरचतुश्शाले' की विशिष्टता भी प्रकट करता है। अतः यह विशेषण भी है।

अन्तःपुरचतुश्शाले—अन्तःपुरे शुद्धान्ते यत् चतुःशालं परस्परा भिमुखीनां शालानां चतुष्ट्येन संयुक्तं सदनमित्यर्थः। अन्तःपुर के अन्दर परस्पर एक दूसरे के सामने बने हुए चार दरवाजों वाला गृह। यह अन्तःपुर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग है जहाँ राजमहल के विशिष्ट कार्य (उत्सव) सम्पन्न किये जाते थे।

अन्योऽन्यविरहिता—परस्परं वियुक्ता, प्रियेणविनाकृतेत्यर्थः। एक दूसरे से वियुक्त होकर। [ऐसी किम्वन्दती है कि चक्रवाक मिथुन एक दूसरे से असीम प्रेम करते हैं और दुर्भाग्यवश वे एक दूसरे से यदि अलग हो जाते हैं तो वियोग में तड़प-तड़प कर अपने प्राणों को छोड़ देते हैं।] यहाँ वासवदत्ता का उदयन के प्रति असीम प्रेम प्रदर्शित करने के लिये चक्रवाक की उपमा कवि ने प्रस्तुत की है।

आर्यावन्तिका—अवन्त्यां भवेत्यर्थः । यहाँ 'तत्र भवः' के अधिकार में 'काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ' इस सूत्र से काश्यादि की आकृतिगणत्व में निठ प्रत्यय और तस्येकादेशे स्त्रीत्वाट्टाप् होता है । अर्थ है अवन्तिदेश से आने वाली आर्या अर्थात् वासवदत्ता ।

अमण्डितभद्रकम्—न मण्डितं अमण्डितं, भद्र एव भद्रकः तम् । भद्र+कः स्वार्थे । बिना शृङ्गार के जिसकी शोभा अपूर्व है ।

प्रियङ्गुशिलापट्टके—प्रियङ्गु फलिनीवृक्षस्य 'लतागोवन्दिनी गुन्द्रा प्रियंगुः फलिनीफली । विष्वक्सेना गन्धफली' इत्यमरः । तदधःस्थे शिलापट्टके पाषाणखण्डे स्थितावासवदत्ता । प्रियंगुः अर्थात् लतामण्डप के नीचे शिलावेदिका के ऊपर ।

महाकुलप्रसूताः—महति कुले प्रसूता उच्चे वंशे गृहीत जन्मा कुलीनेति यावत् । महान् अर्थात् उच्च कुल में पैदा हुई । मनुष्य का स्वरूप एवं आचार-विचार सहज ही उसके वंश मर्यादा का अनुमान करा देता है । वासवदत्ता के भी समस्त आचरण मनोहारी हैं । अतः उसके उच्च कुल के होने में सन्देह नहीं है ।

कौतुकमालिकां—सौभाग्यसूचिकां मंगलस्रजम् । स्त्री के सुहाग को सूचित करने वाली माला । आज समय की क्रूर गति ने इस परम्परा को नष्ट कर दिया है। सम्भव है आज की जयमाला प्रक्रिया इसी परम्परा का परिवर्तित रूप हो ।

अहो ! अकरूणाः खल्वीश्वराः—यहाँ ईश्वर शब्द 'काल' अर्थ को व्यञ्जित करता है । वेदों में काल की महत्ता सर्वोपरि बतलायी गई । 'अथर्ववेद' के १९वें काण्ड में काल का महनीय वर्णन है—"काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः" । यहाँ स्पष्ट रूप में काल को ईश्वर कहा गया है । यह ठीक भी है, काल वास्तव में बड़ा निर्दयी है । कालचक्र में पड़कर आज का राजा कल का भिखारी बन जाता है । यही दशा यहाँ वासवदत्ता की है । कुछ समय पूर्व जिसका सम्मान महारानी के रूप में होता था, आज उसी को पति एवं राज्य से अलग होकर स्त्रियों के लिये सर्वाधिक कष्टकारिणी सौत के लिये सुहाग माला गूंथनी पड़ रही है । यह समय की निर्दयता नहीं तो क्या ?

सपत्नीमर्दनं नाम—वेद भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक रूप हैं । वेदों में 'अथर्ववेद' का एक महत्वपूर्ण स्थान है । 'अथर्ववेद' में जहाँ मारण-मोहन मन्त्रों का उल्लेख मिलता है वहीं अभिचारिक मन्त्रों में हमारी संस्कृति का एक विशिष्ट रूप भी दृष्टिगोचर होता है । सपत्नी का दर्पदलन करना इसका एक प्रमुख अंग है जिसके लिये विभिन्न औषधियों का प्रयोग किया जाता था । यहाँ भी उसी परम्परा की एक झलक प्रस्तुत की गई है ।

———

चतुर्थ अङ्क

विदूषक—संस्कृत नाटच-साहित्य में विदूषक का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह हास्य अभिनेता की भूमिका को यथोचित निर्वाह करता है। अपने विचित्र हाव-भाव एवं हास्यपूर्ण वार्तालाप से दर्शकों को हंसाना विदूषक का प्रमुख कार्य होता है। विदूषक का लक्षण भी प्रस्तुत करते हुए साहित्यदर्पणकार ने कहा है—कुसुमवसन्ताद्याभिधः कर्मवपूर्वेभाषाद्यैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः'' ॥ (सा० दर्पण) ३–४२।

और भी 'विकृताङ्गव चोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः' (सुधाकर) सामान्यतः विदूषक मुख्य अभिनेता का सुहृदय होता है एवं दैनिक जीवन में प्रधान अभिनेता को आवश्यक सलाह भी देता है। मुख्यतया विदूषक भोजनप्रिय ब्राह्मण हुआ करता है।

वत्सराजस्याभिप्रेत विवाहमङ्गलरमणीयः कालः।

वत्सराजस्योदनस्य अभिप्रेतमभीष्टं यद् विवाहमङ्गलं पद्मावतीपरिग्रहमहोत्सव, वस्तेन रमणोयः शोभनः कालः अतीतः समयः दृष्टः अस्माभिरिति शेषः। वत्सराज उदयन के पुनर्राज्यप्राप्ति में मगधराज की सहायता अत्यन्तावश्यक थी, यह सहायता उसी समय प्राप्त हो सकती थी जब मगधराज से उदयन का कोई अत्यन्त निकट का सम्बन्ध हो। पद्मावती के साथ विवाह से इस समस्या का पूर्णतः समाधान हो जाता है। यह सम्बन्ध इसीलिये महाराज उदयन को अभीष्ट भी है अतएव ऐसा महोत्सव जिस काल में सम्पन्न होगा वह समय निश्चित रूप से रमणीय होगा।

उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते—उत्तरा कुरवो नाम काचिद् देवस्थानः तत्रवासोऽवस्थानाम्, मयेति स्वात्मनो निर्देशः, अनुभूयतेऽनुभवगोचरीक्रियते। उत्तरकुरु एक पौराणिक स्थान है जिसकी स्थिति स्वर्णनिर्मित सुमेरु पर्वत के उत्तर में स्वीकार की जाती है। यह स्थान शाश्वत सौन्दर्य का स्थान एवं रमणीयता का आगार है। इसको देवभूमि की संज्ञा प्रदान की जाती है। यहीं अप्सराओं का निवासस्थान भी माना जाता है। ब्रह्मचारी विदूषक उत्तरकुरुवास की अनुभूति तो कहता है किन्तु वह अप्सराओं से रहित ही उत्तरकुरु की अपेक्षा रखता है यह 'अनप्सरस्' शब्द के प्रयोग से नाटककार ने भारतीय संस्कृति की रक्षा की है।

सुप्रच्छदनायां शय्यायां—सु सुन्दरं कोमलं प्रच्छदनमास्तरणं यत्र तस्याम्। प्रकर्षेण छद्यते आस्तीर्यते अनेन इति प्रच्छदनम्, 'आधृषाद्वेति णिजभावपक्षे छदि अपवारणे' इत्यतः करणे ल्युट्। अभिप्राय यह है कि कोमल एवं सुन्दर रूप से सजी हुई शय्या अर्थात् बिछौने पर।

सुखं नामयपरिभूतमकल्त्रवतं च—आमयेन रोगेण परिभूतमाक्रान्तं अकल्पवर्तम्

कल्यवर्त: प्रातराश: प्रातकालिकं भोजनं, नग्नास्ति यत्रेत्येवम्भूतम्, सुखं न । विदूषक वातादि रोगों से पीड़ित है इससे उसे प्रातराश की उपलब्धि नहीं हो पाती। रोगी होने के कारण उसकी शारीरिक प्रक्रिया ठीक नहीं है । इस प्रकार वह अपने को सुखी अनुभव नहीं करता । सुख के साधनों की चर्चा करते हुये कवियों ने 'नित्यमरोगिता च' कहकर आरोग्य को सुख का विशिष्ट साधन बतलाया है । विदूषक रोगाक्रान्त है, इसी से उसे प्रात:कालिक भोजन से भी वंचित होना पड़ता है और इस कारण वह सुखी नहीं है ।

किन्निमित्तं—यह एक क्रिया विशेषण है । किन्निमित्तम् अस्यां क्रियायामिति किन्निमित्तम् । अभिप्राय है—किस प्रयोजन के लिये ।

स्नात:—'स्ना' धातु में 'गत्यर्थाकर्मक' इत्यादि सूत्र से 'क्त' प्रत्यय हुआ है । अभिप्राय है प्राप्त: स्नान तक सारी नित्य क्रियाओं की परिसमाप्ति ।

अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव ।

कुक्षिपरिवर्त: संवृत्त:—विदूषक की यह उक्ति हास्यास्पद होते हुए भी गम्भीरता का आधान कराती है । सर्वप्रथम विदूषक अपने को दुर्भाग्यशाली कहता है और फिर उसका कारण स्पष्ट करते हुए कहता है कि मेरे पेट में कुक्षि परिवर्तन हो गया है जिससे मेरा भोजन उचित रूप से नहीं पच रहा है उपमान रूप में कोयल की आँख को प्रस्तुत करता है । कुक्षि-परिवर्तन भी इसी प्रकार से जैसे कोयल का आँख परिवर्तन, आँख परिवर्तन हिन्दी का एक मुहावरा है जिसका तात्पर्य है किसी मनुष्य या वस्तु की ओर से पूर्णतया उदासीन हो जाना । प्रसिद्ध है कि कोयल अपने बच्चे को कौओं के घोंसले में एक बार रख देती है और फिर कभी उसकी तरफ नहीं देखती । कौवे को ही उसका पालन-पोषण करना पड़ता है । इस उक्ति का लक्ष्यार्थ हमें वासवदत्ता की स्मृति दिलाता है जिसके हाथों विदूषक मोदक खाता था । अब वासवदत्ता की अनुपस्थिति में विदूषक के दैनिक जीवन में अव्यवस्था सी उत्पन्न हो गयी है किन्तु उसे स्पष्ट व्यक्त नहीं कर सकता ।

"प्रवेशक" के बाद की टिप्पणियाँ

प्रवेशक—इसकी परिभाषा द्वितीय अङ्क के प्रवेशक की टिप्पणी में दी गई है । यहाँ चतुर्थ अङ्क के प्रवेशक में चेटी एवं विदूषक के वार्तालाप द्वारा यह सूचना दी गयी है कि पद्मावती का विवाह उदयन से हो गया है, पर अभी तक उदयन वहीं मगध में ठहरा हुआ है और वहाँ उसका बहुत आदर हो रहा है ।

हला—अमरकोष के अनुसार—"नीचे को पुकारने" के लिये 'हण्डे' चेटी को पुकारने के लिये 'हिञ्जे' और "सखी को पुकारने" के लिये 'हला' शब्द का प्रयोग होता है—'हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटी सखी प्रति । यहाँ पद्मावती ने चेटी के प्रति 'हला' सम्बोधन का प्रयोग किया है जो कि अमरकोष के उक्त प्रमाण

के आधार पर समीचीन प्रतीत नहीं होता, परन्तु चेटी को सखी मानकर पद्मावती द्वारा किया गया यह 'हला' सम्बोधन असंगत भी नहीं कहा जा सकता ।

कुसुमिताः—कुसुमानि संजातानि येषां तादृशाः–'तदस्य संजातम्,.........' इत्यादि सूत्र द्वारा 'इतच्' प्रत्यय ।

शेफालिकागुल्मकाः'—हारसिंगार के गुच्छे । शेरते शेफाः भ्रमराः यस्यां सा शेफालिका तस्याः गुलमकाः,—अथवा–शेफा शयन शालिनः अलयो यत्र,—अर्थात् जिसमें भंवरे मस्त होकर सोते हैं वह लता ।

प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिक लम्बकैः—जिसके मध्य में मूंगे गुंथे हुए हैं ऐसी मोतियों की माला के समान । हारसिंगार के फूल का फैला हुआ भाग सफेद एवं पिछला नालि का भाग पीलापन लिए हुए लाल सिन्दूरी होता है। अतः वह ऐसा मालूम होता है मानो मोती के साथ मूंगा जड़ दिया गया हो। साथ ही ऐसे मनमोहक फूलों से लदी डाली जब नीचे लटक जाती है तो मूंगों से जटित साक्षात् मोतियों की माला के समान सुशोभित होने लगती हैं ।

आचिताः—व्याप्त । आ + चि + क्त ।

"उभे उपविषतः"—से बाद की टिप्पणियाँ

अर्धमनः शिलापट्टकैरिव—मनः शिलायः पट्टकाः मनः शिलापट्टकाः, अर्धे मूल भागे मनः शिलापट्टकाः इति अर्धमनः शिया पट्टकाः तैरिव । आधे भाग में (मूल भाग में) मैनसिल टुकड़े की भाँति । हारसिंगार के फूलों का पिछला नालि का भाग सिदूरी होता है और आगे का भाग श्वेत होता है । अतः उनसे भरी हुई चेटी की अञ्जलि मैनसिल के लाल-लाल टुकड़ों से भरी-सी प्रतीत होती है ।

ना अवचित्य—यह प्रयोग अवैयाकरण है इसके स्थान पर "अलभ वचित्य" प्रयोग ही साधु ।

उत्कण्ठता—उत् + कण्ठ् + क्त + टाप । प्रिय से निकलने के लिये जो उत्सुकता-मिश्रता व्याकुलता होती है, उसे उत्कण्ठा कहते हैं ।

न जानामि—पद्मावती की इस उक्ति में भास ने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रेम की तीव्र अनुभूति का चित्रण किया है । प्रेम वस्तुतः कहने की बात नहीं "वह तो अनुभूति की वस्तु है ।" इसीलिये वासवदत्ता के यह पूछने पर कि–'सखि ! क्या तुम्हें पति प्रिय है"—पद्मावती कहती है 'यह तो मैं नहीं जानती परन्तु उनके बिना मैं बेचैन सी हो जाती हूँ" । पद्मावती की इस उक्ति में उदयन के प्रति उसकी प्रगाढ़ प्रेमानुभूति के साथ-साथ उसको शालीनता एवं सरलता भी साकार हो उठी है ।

दुष्करं खलु—वासवदत्ता की इस उक्ति में उसकी अन्तर्वेदना एवं विवशता अभिव्यक्त हो रही है । एक ओर तो उसे अपना सपत्नीत्व छिपाना पड़ रहा है तथा

दूसरी ओर सखी सम्बन्ध से पद्मावती के पति प्रेम को पल्लवित करने के लिए समुदाचार का निर्वाह करना पड़ रहा है । यही वासवदत्ता के लिए दुष्कर कार्य है ।

आर्यपुत्र पक्षपाते नातिक्रान्तः समुदाचारः—वासवदत्ता पद्मावती के यहाँ "अवन्तिका" के रूप में रह रही है । उदयन के प्रति प्रेम की तन्मयता के कारण वह कभी-कभी अपने इस प्रच्छन्न रूप को भूल कर ऐसी उक्तियाँ कह देती है कि जिससे रहस्योद्घाटन होते होते रह जाता है और फिर वह अपने वाग्वैदग्ध्य से समुचित संगति बिठा देती है । यहाँ भी पद्मावती जब यह संदेह व्यक्त करती है कि "क्या आर्यपुत्र जैसे मुझे प्रिय हैं वैसे ही अपनी पूर्व परिणीता वासवदत्ता को भी थे या नहीं" -तो वासवपत्ता इसके उत्तर में भावुकतावश अचानक कह उठती है—"अतोऽप्यधिकम्" । यह सुनकर शंकितमना पद्मावती पूछती है कि—"तुम यह कैसे जानती हो" । पद्मावती के इस प्रश्न के साथ ही उसे अपनी भूल का बोध होता है और वह—"हम्, आर्यपुत्र पक्षपातेन"······इत्यादि वाक्य द्वारा मन ही मन आत्मविश्लेषण करतो है तथा "यद्यल्पः स्नेहः"...इत्यादि वाक्चातुर्य द्वारा बात को सम्हाल लेती है ।

बन्धुकजीवकुसुम—इस फूल को संस्कृत में "बन्धूक" तथा 'दुपहरिया' कहते हैं । इसकी यह विशेपता है कि यह दोपहर की तीव्र धूप में खिलता है ।

प्रचित—प्र + चि + क्त । इकट्ठे किये हुये ।

पद्य १—

(१) **उज्जयिनी गते**—अवन्ती के राजा प्रद्योत ने उदयन को अपने मन्त्री द्वारा पकड़वा कर उज्जयिनी में रखा था । उदयन एक कुशल वीणावादक था । उसकी प्रसिद्ध एवं अत्यन्त प्रिय वोणा का नाम "घोषवती" था, जिसके स्वर से वह हाथियों को भी पकड़ लेता था । प्रद्योत को जब उदयन की इस विशेश्रता का पता लगा तो उस ने उसे अपनी पुत्री वासवदत्ता को वीणा सिखा ने के लिये नियुक्त कर दिया । वीणा सिखाने के चक्कर में ही उदयन वासवदत्ता के सौन्दर्य आदि गुणों पर मोहित होकर उसके प्रेमपाश में फंस गए ।

(२) **कामेन**—हृदय की रागात्मक प्रवृत्ति का नाम ही काम है और इसकी गणना देवताओं में की गई है । अमरकोष में कामदेव के निम्नलिखित उन्नीस नाम गिनाए गए हैं—

मदनो मन्मथोमारः प्रद्युम्नो मीनकेतवः,
कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्ग कामः पञ्चशरः स्मरः ।
शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः
पुष्पधन्वा रतिपतिर्मकरध्वज आत्मभूः ॥

ये सभी नाम कामदेव की विभिन्न विशेपताओं को प्रकट करते हैं ।

पञ्चशरः पातिता—काम ने अपने पाँचों बाण छोड़ दिये अर्थात् वासवदत्ता

के रूप पर मोहित उदयन को रागात्मक वृत्ति ने पूरी तरह अभिभूत कर लिया। काम के पाँच बाण माने गए हैं इसीलिये उसे 'पञ्चशरः' या पञ्चेषु भी कहा जाता है। अमरकोष में कामदेव के निम्न पाँच बाण गिनाए गए हैं—

"अरविन्दमशोकं च चूत च नवमल्लिका"—
नीलोत्पल च पञ्चैतेपंचबाणस्य सायका:"—

ये पाँचों वस्तुतः रति भाव के उद्दीपक होते हैं। रागी व्यक्ति इन्हें देखकर विह्वल हो उठते हैं।

(४) स्वैरम्—स्वरस्य ईरम् स्वैरम—अपनी इच्छानुसार। जी भर कर। स्व + ईर्–भावे घञ्।

(५) अद्यापि सशल्यम्—वासवदत्ता के कारण उदयन पर छोड़े गये कामदेव के पाँचों वाणों से वह आज भी घायल है और पद्मावती को लक्ष्य करके वह पुनः बींध दिया गया है अर्थात् वासवदत्ता को तो वह सर्वाङ्गीण रूप से प्यार करता ही था और आज भी उस भाँति वह उसके प्रेमपाश में फंसा हुआ है परन्तु इतना होने पर भी अब फिर वह पद्मावती के प्रेम में अभिभूत हो गया है। "भूयश्च विद्यावयम्" कह कर उदयन ने अपनी इसी प्रेमानुभूति को व्यक्त किया है।

कथमयं षष्ठः—यह छटा बाण कहाँ से। काम ने वासवदत्ता को विषय बनाकर उदयन पर अपने पाँचों बाणों का प्रयोग कर दिया परन्तु पद्मावती को निमित्त मानकर अब उसने यह छटा बाण कहाँ से छोड़ा, यह बड़े विस्मय की बात है क्योंकि काम के पास तो केवल पाँच ही बाण थे।

असनकुसुम संचितम्—बन्धूक पुष्प से व्याप्त। कवि ने इससे पूर्व भी 'हारसिंगार' आदि फूलों का वर्णन किया है। बन्धूक एवं हारसिंगार के फूल शरद् समय में ही सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। अतः उक्त पुष्पों के चित्रण से प्रस्तुत घटना का शरत्कालीन होना प्रतीत होता है। स्वयं कवि ने भी आगे 'शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे कहकर यही सूचित किया है।

व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव—व्याघ्रचर्मणा अवगुण्ठितं मण्डितम् पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकम्। शिलापट्ट पर्वत की भाँति ऊँचा था। अतः उसका नाम 'पर्वत' तिलक' रखा गया था और बन्धूक के फूलों से व्याप्त वह शिलापट्ट ऐसा मालूम होता था—मानो उसे बाघ के चमड़े से आच्छादित कर दिया गया हो।

दारुपर्वत—लकड़ी की बनी हुई पर्वत की प्रतिकृति। यहाँ "इवे प्रतिकृतौ" इस पाणिनि सूत्र द्वारा कन् प्रत्यय हुआ है। "पर्वततिलक" नामक शिलापट्ट और 'दारु पर्वत' ये दोनों प्रमदवन में विनोदार्थ बनाये गये थे।

प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्—प्रसारितौ यो बलदेवस्य बाहू, तद्वद्दर्शनीयाम्। यहाँ कवि के सारस पंक्ति को बलदेव की फैलाई हुई भुजाओं की भाँति कहकर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है। भास ने प्रस्तुत नाटक के प्रथम पद में भी बलराम की भुजाओं से ही रक्षा की कामना की है। यहाँ 'प्रसारित' के स्थान पर 'प्रसादित'

तथा प्रसाधिक' पाठ भी मिलते हैं जिनका अर्थ क्रमशः स्वच्छ (धवल) तथा अलंकृत होगा ।

समाहितम् गच्छन्तीम्—एक क्रम से जाती हुई (सारसपंक्ति) को। यहाँ 'समाहितम्' क्रिया विशेषण है। सम+अङ्, धा : क्त।

पद्य २—

(१) **ऋज्वायताम्**—ऋजु च आयता च ऋज्वायतां तां ऋज्वायताम्। सरल और विस्तृत। यहाँ चार चकार 'ऋज्वायतां'—आदि चारों विशेषणों के समुच्चय के लिये प्रयुक्त हुए हैं।

(२) **सप्तर्षिवंशकुटिलाम्**—सप्तर्षिसमूह के सदृश टेढ़ी। मरीचि अङ्गिरा अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ ये सातो सप्तर्षि माने गये हैं। 'सप्त च ते' ऋषयः—इस विग्रह में "दिक्संख्ये संज्ञायाम" सूत्र द्वारा कर्मधारय समास होकर सप्तर्षयः रूप बनता है।

कोकनद—यद्यपि "रक्तोत्पलं कोकनदम्" इस कोष के अनुसार 'कोकनद' शब्द लाल कमल का वाचक है परन्तु यहाँ प्रसंग के औचित्य से इसका 'श्वेत कमल' अर्थ ग्रहण किया गया है। सारसपंक्ति श्वेत होती है। अतः श्वेत कमल के साथ उसका सादृश्य बताना समीचीन है।

तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि—पतिव्रता के लिये परपुरुष का दर्शन करना पाप है अतः पद्मावती की इस उक्ति द्वारा आयातेत वासवदत्ता को यह बताना चाहती कि—"आर्यपुत्र (उदयन) को देखने से कहीं तुम्हारा व्रत भङ्ग न हो जाये इसीलिये तुम्हारे कारण से ही मैं उनके दर्शनों को त्यागती हूँ। तो आओ लता-मण्डप में घुस जायें"।—परन्तु पद्मावती का हार्दिक अभिप्राय छिपकर राजा के विश्वस्त आलाप को सुनना था और इसी लिये वह वासवदत्ता के सामने उक्त बहाना बनाकर लता-मण्डप में छिप गई थी। साथ ही—पद्मावती का सन्देह था कि यदि राजा वासवदत्ता को देख लेगा तो उसके अद्भुत सौन्दर्य पर मुग्ध हो जायगा और फिर मुझे ईर्ष्यानल में झुलसना पड़ेगा। इसी लिये वह वासवदत्ता को सदा ही राजा की आँखों से बचाने का प्रयास करती थी और अब भी वह इसी अभिप्राय से 'आर्यपुत्रदर्शन परिहार' के बहाने वासवदत्ता को लेकर लता-मण्डप में चली गयी।

वसन्तकसंकीर्तनेन—राजा द्वारा वसन्तक का नाम पुकारने से वासवदत्ता को वह दिन याद आ जाते हैं जबकि उदयन प्रद्योत के यहाँ बन्दी थे तथा यौगन्धरायण ने परिवर्तित वेश में अपने साथियों सहित वहाँ पहुंच कर उदयन तथा वासवदत्ता दोनों को वहाँ से मुक्त कराया था। अब यहाँ प्रमदवन में भी उदयन हैं, वसन्तक है तथा वह स्वयं भी है। अतः उसे स्वाभाविक रूप से उज्जयिनी की याद आ गई है।

आसीनौ—आस् उपवेशने धातु से शानच प्रत्यय तथा 'ईदासः" सूत्र द्वारा ईत्व। यह प्रथमा द्विवचन का रूप है।

प्रतीक्षिष्यावहे—यहाँ विध्यर्थ में लृट् का प्रयोग है।

सर्वमाकुलम् कर्तुकाम—पद्मावती अपने पास धरोहर रूप में रखी गई आवन्तिकावेश धारिणी वासवदत्ता को राजा उदयन की आँखों से बचाने के लिये सदा ही प्रयत्नशील रही। प्रमदवन में भी उसने इसी उद्देश्य से स्वयं भी राजा के दर्शनों का त्याग कर वासवदत्ता सहित लता-मण्डप में प्रवेश किया था। परन्तु अब शरत्कालीन आतप से बचने के लिये विदूषक द्वारा राजा को उसी लता-मण्डप में प्रविष्ट कराने की बात सुनकर, उसे यह चिन्ता होने लगती है कि यदि राजा लता-मण्डप में घुस आये तो उनकी दृष्टि वासवदत्ता पर अवश्य ही पड़ेगी तथा वासवदत्ता को भी 'परपुरुष दर्शन' हो जायगा और इस प्रकार उसके अब तक के सारे प्रयत्नों पर पानी फिर जायगा। पद्मावती की प्रस्तुत उक्ति में उसका यही हृदयगत भाव व्यक्त हो रहा है।

मधुकरपरिनिलीनाम्—मधुकरा: भ्रमरा: परिनिलीना: पुष्परसपानार्थं निश्चलतया समन्तोऽवस्थिता तत्र ताम्। परि+नि+ली+क्त। चेटी को यह उक्ति सूझी है कि लता हिलाने से भौंरे उड़ने लगेंगे और उनसे घबराकर राजा तथा वसन्तक लता-मण्डप में नहीं घुस सकेंगे।

अविधा—इसका प्राकृतरूप 'अविहा' है। "आप्टे" के अनुसार इस अव्यय का प्रयोग 'सहायता करो'—'सहायता करो' इस भाव को व्यक्त करने के लिये किया जाता है।

दास्या: पुत्रै:—दासी के पुत्र अर्थात् दुष्ट या नीच भौंरों से। यह एक प्रकार की गाली है। यहाँ 'पुत्रोऽन्यतरस्याम्' सूत्र द्वारा षष्ठी का अलुक् हो गया है।

पद्य ३—

(१) **मधुमदकला:**—मधून: पुष्परस्य मदेन कला अव्यक्तमधुरा। पुष्परसपान के मद से अस्पष्ट एवं मधुर गुञ्जार करते हुये। मधुर तथा अस्पष्ट ध्वनि को "कल" कहते हैं—'ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कल:'—अमरकोष।

(२) **उपगूढा:**—आलिङ्गित। उप+गुह+क्त।

(३) **विषण्णा:**—वि+सद्+क्त। प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

अभिप्राय यह है कि राजा यदि किसी भी एक के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं तो दूसरों के लिये वह अपमानजनक वस्तु होगी, यही कारण है कि यहाँ राजा ने बहुमान संकटे का प्रयोग किया है।

पद्य ५—

(१) **रूपशीलमाधुर्यै:**—रूप, नम्रता एवं मधुर भाषण स्त्रीयों के विशिष्ट गुण हैं महाभारत में प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च' कहकर इसी तथ्य का स्पष्टीकरण किया गया है कि पुरुष उसी स्त्री के सहवास से सुखी हो सकता है जो सुन्दरी एवं मधुरभाषिणी हो। यहाँ पद्मावती में ये गुण वर्तमान हैं। यही कारण है कि वह महाराज उदयन को अत्यन्त प्रिय है। रूपं च शीलं च माधुर्यं च इत्येतेषां समाहारद्वन्द्व: रूपशीलमाधुर्याणि, तै:।

(२) **ममबहुमता**--मेरी बहुत ही माननीया अथवा अतिप्रिया है। मम में 'मतिबुद्धि पूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से षष्ठी हुई है।

अदाक्षिण्यः---नास्ति दाक्षिण्यं यस्मिन् स अदाक्षिण्यः। दाक्षिण्य नायक की एक कोटि होती है। ऐसा नायक सभी नायिकाओं से समान रूप से प्रेम करता है। साहित्यदर्पण में इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से दी गयी है—

'अनेकमहिलासमरागो दाक्षिण्यः कथितः

वैधेय—मूर्ख ! 'मूर्ख वैधेय बालिशः' इत्यमरः।

विदूषक—के इस वाक्य का व्यंग्यार्थ यह है कि पद्मावती भी वासवदत्ता की ही भाँति यदि नित्य स्वादिष्ट भोजनों से मेरा सत्कार करे तो वे भी वासवदत्ता की ही भाँति मेरे लिये माननीया हो सकती है।

विसंवादितः—छिन्न-भिन्न कर दिया, नष्ट कर दिया। विदूषक ने वासवदत्ता की मृत्यु की याद दिलाकर कथा प्रसङ्ग का सारा आनन्द समाप्त कर दिया अन्यथा यह मनोहर प्रसङ्ग अभी आगे चलता।

अप्रत्यक्षम्—परोक्ष में अनुपस्थिति में। सामने तो चाटु वचन सभी कहते हैं परन्तु पीठ पीछे प्रशंसा विरले ही किया करते हैं अतः राजा ने वासवदत्ता को मरी हुई समझकर उसके बारे में जो भी प्यार भरी बातें कहीं उनसे परम आनन्द मिल रहा है। अपने प्रियतम के मुख से परोक्ष में अपनी प्रशंसा सुनने में बहुत ही आनन्द आता है, यह एक स्वाभाविक बात है।

धारयत धारयतु—यहाँ स्वार्थिक णिच प्रत्यय है। दृढ़ता सूचित करने के लिये द्विरुक्ति है।

अनतिक्रमणीयो हि विधिः—विधि के विधान को टाला नहीं जा सकता। होनहार होकर ही रहता है। यह एक महत्वपूर्ण सूक्ति है। राजा उदयन को भी पत्नि वियोग होना था, उसे कोई टाल नहीं सकता था। अतः यह वियोग दुःख उसे सहना पड़ा।

पद्य ७—

(१) **दुःखम्**—कतिपय विद्वानों का यह विचार है कि 'अनुराग' कर्ता के अनुसार यहाँ 'दुःखम्' के स्थान पर 'दुखकरम' होना चाहिये था परन्तु यह समीचीन नहीं है। क्योंकि दुःख शब्द नित्य नपुंसकलिङ्ग है, और इसलिये यह 'वेदाः 'प्रमाणम्' की भाँति अपने लिङ्ग वचन को नहीं छोड़ सकता।

(२) **स्मृत्वा स्मृत्वा**—यहाँ त्वा प्रत्यय है। 'सामनकर्तृकयोः पूर्वकाले' इस पाणिनि सूत्र के अनुसार समानकर्तृक धात्वर्थ परे रहने पर ही क्त्वा प्रत्यय होता है। परन्तु यहाँ 'स्मृ और 'या' धातु भिन्न कर्तृक हैं। अतः 'स्मृत्वा' के आगे 'व्याकुलीभवताः' पद का आक्षेप करने से यहाँ संगति बैठ सकती है।

(३) **विमुच्य**—यहाँ 'क्त्वा' को 'ल्यप्' हो गया है यहाँ भी 'स्थातव्यम्' पद का अध्याहार अर्थसंगति के लिये उचित है।

(४) **प्राप्तानृण्या**—उऋण हुई बुद्धि या मन। ऋणस्य अभावः आनृण्यम् प्राप्तं आनृण्यं यया सा प्राप्तानृण्या।

(५) **याति बुद्धिः प्रसादम्**—प्रिय के वियोग में जब वियोगी पर्याप्त आंसू बहा लेता है तो वह उसके प्रेम-ऋण से उऋण हो जाता है और उसका मन हलका व शान्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह नितान्त उचित है। शोकसन्तप्त व्यक्ति को रोने से एक अद्‌भुत शान्ति मिलती है और उसके हृदय का गुबार निकल जाता है। इसीलिये महान् कवि भवभूति ने कहा है—पुरोत्पीडे तडागस्यपरीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥

(६) इस पद्य में 'शालिनी' छन्द है। लक्षण—शालिन्युक्तास्तौ तगौ गौऽब्धिलोकैः" ॥७॥

क्लिन्नम्—क्लिद् + क्त,—'रदाभ्यां' निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः" इस सूत्र द्वारा तकार व दकार को नत्व हो गया है।

मुखोदकम्—मुखाय उदकं मुखोदकम्। मुँह धोने के लिये जल। यहां मध्यमपदलोपी समास है।

एतदिदम्—पद्मावती द्वारा राजा के अश्रुपात एवं विदूषक के जल लाने के विषय में पूछे जाने पर विदूषक 'यह यह है,—यह है यह' ऐसा कहकर वास्तविक बात को छिपाना चाहता है। 'एतदिदम्' पद को दुबारा प्रतिलोम रूप में दोहराने से विदूषक का यह अभिप्राय है कि—'मेरे हाथ में यह केवलमात्र जल ही है और कुछ नहीं'।

वातनीतेन···साश्रुपातम्—राजा उदयन वासवदत्ता के वियोग में व्याकुल है और इसीलिये उसकी आंखों में आँसू आ गये हैं यदि यह बात पद्मावती को मालूम हो जाये तो उसमें सपत्नीसुलभ ईर्ष्याभाव जाग उठेगा तथा वह प्रणय कुपित हो जायगी। इसी आशंका से विदूषक वास्तविकता को छिपाकर पद्मावती से कहता है कि काशपुष्प की धूलि के आँख में पड़ने से राजा के मुख पर आँसू बह आए हैं। अतः आप मेरे हाथ से यह जल लेकर राजा का मुख धो दीजिये।

सदाक्षिण्यस्य जनस्य—उदार व्यक्तियों के परिजन भी उदार ही होते हैं अर्थात् जैसे को तैसा मिलता है। राजा स्वयं उदार है, अतः उसका मित्र वसन्तक भी उदार है, तभी तो वह राजा के मुख को अश्रु कलुष देखकर उसको धोने के लिये कहीं न कहीं से ढूंढ कर जल ले जाता है।

एवमिव—राजा के पूछने पर विदूषक उसके कान में कहता है कि "आपकी आंखों में आँसू और मेरे हाथ में जल देखकर जब पद्मावती ने इस विषय में मुझसे आग्रहपूर्वक पूछा तो मैंने आपके रोने का वास्तविक कारण न कहकर आंख में काशकुसुम की धूलि के गिरने को अश्रुपात का कारण बता दिया। साथ ही अपने हाथ में स्थित जल को मुंह धोने का जल बताकर पद्मावती को दे दिया और कहा

कि इससे तुम राजा के अश्रु कलुष मुख को स्वच्छ करो। यह इसी उद्देश्य से जल लेकर आपके समक्ष उपस्थित है। अब आप भी अपने अश्रुपात का यही कारण बताइये तथा ऐसा ही भाव प्रदर्शित कीजिये, अन्यथा यदि मेरे और आपके कथन में विरोध व अन्तर हुआ तो हम दोनों ही परेशानी में पड़ जायेंगे।"

पद्य ८—

(१) **शरच्छशाङ्कगौरेण**—शरतकालीन यः शशाङ्कश्चन्द्रः स इव गौरः शुभ्रस्तेन। शरत्कालीन चन्द्रमा की भाँति धवल। शरद् ऋतु में बादलों के न रहने से आकाश स्वच्छ रहता है और इसीलिये शरत्कालीन चन्द्रमा भी धवल होता है। यहाँ शरद् के धवल चन्द्र से धवल काशपुष्प की तुलना समीचीन है आचार्य वामन ने शरच्छशाङ्कगौरेण "के स्थान पर" "शरच्चन्द्रां सुगौरेण" पढ़ कर यह पद्य अपने "काव्यालङ्कार सूत्र" में उद्धृत किया है।

(२) **भामिनी**—'अमरकोश' के 'कोपना सैव भामिनी' इस वचन के अनुसार जो 'कोपना' है वही 'भामिनी' कहलाती है और वस्तुतः प्रणयकुपित होना ही नारी के सौन्दर्य का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

(३) **साश्रुपातम्**—अश्रुपातेन सहितम्। अक्षुपात से युक्त। इस पद्य में राजा उदयन ने विदूषक द्वारा निर्दिष्ट रीति से वासवदत्ता के विरहजन्य आँसुओं को काशपुष्प की धूलि आँख में गिरने का बहाना बनाकर बड़ी कुशलता से छिपाया है। इससे पूर्व वासवदत्ता की आँख में भी—विरहजन्य आँसू दिखलाई दिये थे और उसने भी वहाँ 'काशकुसुमधूलि को ही अश्रुपात का कारण बताकर वास्तविकता को छिपा लिया था। विरह में दोनों की हृदयस्थिति किस प्रकार एकाकार हुई है यह बात बड़े नाटकीय ढंग से भास ने प्रस्तुत की है॥८॥

पद्य ९—

(१) **बाला**—यह शब्द पद्मावती के हृदय एवं शरीर दोनों की कोमलता को अभिव्यक्त करता है। अभी-अभी पद्मावती का विवाह हुआ है। विवाह से पूर्व उसने अपने मन में न जाने आशाओं के कितने भव्य भवन बनाकर खड़े किये होंगे। और यदि अब विवाह के तुरन्त बाद उसे यह पता लग जाये कि उसका पति किसी अन्य के वियोग में व्याकुल है तो उसका वह कल्पना प्रसूत प्रासाद लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा। इसी आशय से उदयन ने पद्मावती को "इयं बाला नवोद्वाहा" कहा है।—'आषोडशाद्भवेद्बाला तरुणी तत उच्यते' इस कथन के अनुसार लड़की सोलह वर्ष तक 'बाला' तथा उसके बाद 'तरुणी' कहलाती है।

(२) **नवोद्वाहा**—नव उद्वाहोयस्याः सा नवोद्वाहा। नव विवाहिता।

(३) **उचित तत्रभवत**—उपर्युक्त प्रसङ्ग को समाप्त करने के उद्देश्य से विदूषक ने यह नितान्त समयोचित बात कही है क्योंकि उदयन के वासवदत्ता वियोग विषयक उक्त प्रसङ्ग यदि और लम्बा चला जाता तो पद्मावती के सामने सारी पोल खुल जाती और राजा के सामने एक संकट उत्पन्न हो जाता। इसी

संकट से बचाने के लिये विदूषक राजा के समक्ष वहाँ से चलने का प्रस्ताव रखता है और कहता है कि मगधराज दर्शक अपराह्न समय में अपने इष्ट मित्रों से भेंट करेंगे। अतः इस अवसर पर शिष्टाचार तथा लोक व्यवहार आदि की दृष्टि से आपका उनके पास रहना उचित है।

सत्कारो हि नाम—सत्कार, प्रत्युत्तर में किये गये सत्कार से प्रेम को जन्म देता है। अर्थात् सत्कार एक तरफा चीज नहीं है। यह उभयपक्षीय है। केवल एक ओर से सत्कार होने पर प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता। यहाँ विदूषक के कहने का यह अभिप्राय है कि अपनी बहिन का विवाह उदयन के साथ करके दर्शक ने उदयन का आदर किया है। अतः उसके प्रत्युत्तर में उदयन को भी दर्शक का आदर करना चाहिये। अब तीसरे पहर दर्शक इष्टमित्रों से मिलने के लिये बैठा है, इस समय यदि उदयन भी उसके साथ रहे तो उसका सम्मान और अधिक बढ़ेगा तथा आदर के आदान-प्रदान की इस पुनीत परम्परा से उदयन तथा दर्शक के सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ होंगे।

अपराह्णकाले—अह्नः अपरम् इति अपराह्णः। यहाँ "अह्नोऽह्नएतेभ्य" इस सूत्र द्वारा अहन् शब्द को अह्न आदेश हो गया है। अपराह्णः कालः इति अपराह्णकालः तस्मिन् अपराह्णकाले।

अवन्तिकाम्--मालव की रहने वाली को।

शब्दायस्व—आवाज दो। शब्दं करोति इति शब्दायते, यह लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है।

समुद्रगृहके:—जलयन्त्रों द्वारा तापनियन्त्रितगृह। आज इसी समुद्रगृह को अंग्रेजी भाषा में 'एअर कन्डीशन' कहते हैं।

स्तीर्णा--बिछाई हुई। √स्तृ + क्त + टाप्।

शय्या—शेते अस्याम् इति शय्या, √शी + क्यप् + टाप्। सेज इति हिन्दी।

दीपप्रभावसूचितरूप:—दीपक के उजाले में दिखाई देने वाला स्वरूप। दीपस्य प्रभावेण-समर्थेन, सूचितं प्रकटितं स्वरूपं यस्य सः। अथवा दीपस्य प्रभया विरुचितं रूपं आकारो यस्य सः।

काकोदर:--साँप। ईषत् अकति इस अर्थ में अक टेढ़ा चलने के अर्थ में 'ईषदर्थे च' इस सूत्र से कु को का आदेश होने पर काकोदर शब्द निष्पन्न होता है।

अहो सर्पव्यक्ति वैधेयस्य—हाय! मूर्ख को यह साँप मालूम पड़ता है। यहाँ आशय यह कि विदूषक ने जिसे सर्प समझा था वह तोरण माला थी। तभी तो राजा कहता है कि मूर्ख को तोरण माला का भी ज्ञान नहीं जो उसे सर्प मान रहा है। वैधेय-मूर्ख, जो दूसरे को बताने पर ही कोई कार्य करता है। विधेयं विज्ञानं अधिकारी विधेय + अण वैधेय शब्द स्वतः सिद्ध हो जाता है।

पद्य ३—

(क) मूर्खः -मुह्यति इति मूर्खः,√मुह+ख। यहाँ मुह, का मूर आदेश हुआ है।

(ख) ऋज्वायताम्—ऋजुश्चासौ आयता च ताम्। अर्थात् सीधी और लम्बी होती हुयी। (कर्मधारय समास)।

(ग) मुखतोरणलोलमालां—बाहर के द्वार के महराव की चंचल माला को। मुख द्वारे तोरण तस्मिन् मुखतोरणे लोला चासौ माला लोल, माला, मुख तोरणे लोल माला ताम्। तोरण-किसी घर या नगर का बाहरी द्वार।

(घ) सर्पम्—यह विधेय होने पर भी उद्देश्य 'माला' से भिन्न है। वैसे तो प्रायः समानता होती है, पर कभी-कभी लिंग परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है।

(ङ) परिवर्तमाना—चारों ओर से स्पन्दित होती हुयी। परि+√वृत+लट् शानच्। यहाँ पर मुमागम हुआ है।

पद्य ४—

(क) व्याकुलप्रच्छदा—जिसकी चादर सिकुड़ गई हो। व्याकुलः प्रच्छदः यस्याः सा वहुब्रीहि समास। प्रच्छद = बिछाने की चादर। प्र+√छद्+णिच+घ।

(ख) शिरोपधानम्—तकिया। शिर उपधीयते स्थापयते यत्र तत् शिरोपधानम्। यहाँ शिर शब्द अकारान्त है।

(ग) रोगे—रोग में। इसमें 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से भाव में षष्ठी हुई है।

(घ) रुजा—रोग के द्वारा। यहाँ हेतु में तृतीया विभक्ति हुयी है।

(ङ) आस्तृतसमा—फैली हुई और बराबर। आस्तृता चासौ समा (कर्मधारय समास)।

(च) अवनता—झुकी हुई। अव+√नम्+क्त—टाप्।

पद्य ५—

(क) नयनान्तलग्नम्—आखों के कानों में रुके हुए। नेत्रों के कानों को अपाङ्ग और अपाङ्ग से देखने को कटाक्ष।

(ख) अवन्त्याधिपतेः—मालव देश के स्वामी की। यह अपाणिनीय प्रयोग है। आ समन्ताद् भावेन अधिपतिः, अधिपतिः, अवन्तयाः अधिपतिः अवन्त्याधिपतिः तस्य।

(ग) सुतायाः—यहाँ 'स्मरामि' के योग में षष्ठी विभक्ति हुयी हैं। खेदपूर्वक स्मरण के योग में षष्ठी होती है।

मुहूर्तकम्—क्षण भर। यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया हुई है।

प्रावारकम्—प्र+√वृ (आच्छादने)+घञ' उपसर्गस्य घञ् मनुष्ये बहुलम्' इति सूत्रेण उपसर्गस्य दीर्घः=प्रवारः+क (स्वार्थे)=प्रवारकः, तम्। अर्थात् ओढ़ने का वस्त्र, चादर आदि।

दुःखिता—दुःखम् सञ्जाताम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे, दुःख+इतच तारकादित्वात्, ततष्टाप्।

काम्पिल्य—दक्षिणपाञ्चालस्य राजधानी। कम्पिला इति प्रसिद्धिः साम्प्रतम् ऐसा स्थान फर्रुखाबाद जिले में है।

नगरं ब्रह्मदत्तं नाम—यहाँ विदूषक ने राजा को हंसाने के लिये इस तरह का प्रयोग किया है।

अकरुणाः—निष्ठुर, क्रूर। यहाँ पर वासवदत्ता विधाता को क्रूर सिद्ध करती दिखाई पड़ती हैं क्योंकि यदि विधाता क्रूर न होता तो पद्मावती मेरे पति को सान्त्वना प्रदान करने वाली बीमार क्यों पड़ जाती? वास्तव में दैव निर्दयी है। अविद्यमाना करुणा येषां ते अकरुणाः। यहाँ पर नञ् बहुव्रीहि समास विद्यमान शब्द का लोप।

अन्यासन परिग्रहेण—अन्यत् आसनं (कर्मधारय) तस्य परिग्रहः तेन (हेतौ तृतीया)।

यहाँ वासवदत्ता विचार करती हैं कि अलग बैठने से स्नेह थोड़ा प्रतीत होता है, गहरा नहीं। मेरा और पद्मावती का सम्बन्ध प्रगाढ़ है, अतः उसके समीप ही बैठना उचित है।

प्रह्लादितमिव मे हृदयम्—प्रह्लादः आनन्द सञ्जातोऽस्य तत् प्रह्लादितम्। यहाँ प्रह्लाद शब्द से इतच् की गई है। कवि ने यहाँ बड़ा ही मनोहर एवं मनोमुग्धकारी भाव प्रदर्शित किया है। क्योंकि वासवदत्ता जिसे पद्मावती समझकर स्पर्श-सुख का अनुभव कर रही थी, वह वास्तव में उसका प्रियतम ही था। इस रहस्य से परिचित न होने के कारण कहती है कि न जाने क्यों आज मेरा मन प्रफुल्लित हो रहा है। प्रतिदिन मैं इसके साथ बैठती हूँ, पर ऐसे सुख का कभी अनुभव नहीं हुआ।

(क) प्रतिज्ञाभारः—योगन्धरायण की प्रतिज्ञा थी कि वासवदत्ता को छिपाकर पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराने के बाद मगधराज की सहायता से उदयन अपने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त कर लेंगे। इसीलिये वासवदत्ता चिन्तित है कि मेरे देखे जाने पर जल जाने का सारा रहस्य खुल जायगा। राजा दर्शक हमारे स्वामी को सहायता भी न देगा, फिर योगन्धरायण का प्रतिज्ञाभार भी व्यर्थ है।

विरचिकाम्—कथासरित्सागर के अनुसार विरचिका उदयन की प्रेमिका थी। एक बार भूल से वासवदत्ता को उदयन ने विरचिका के नाम से सम्बोधित किया था। अतः वह नाराज हो गई थी। फिर उदयन ने पैर पकड़कर मनाया था।

हस्तौ प्रसारयति—स्वप्न में कुपित होकर भागती हुई वासवदत्ता को पैर पकड़कर मनाने के लिये राजा अपने दोनों हाथ फैलाता है। यहाँ स्वप्न में राजा को वासवदत्ता का दर्शन होता है। इसीलिये कवि ने मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा है। स्वप्न की घटना भी इसी अंक में घटती है। अतः सम्पूर्ण नाटक का महत्व भी इसी अंक में सर्वतोभावेन प्रस्फुटित हुआ है।

आ अपेहि—यहाँ 'आ' अव्यय कोप एवं स्मरण का बोधक है।

पद्य ७—

(क) भूतार्थः—भूतः सत्यः अर्थः यस्य स भूतार्थः। अर्थात् सत्य अर्थ भूतं क्ष्मादोप्राप्ते वित्ते समे सत्ये इति मेदिनी।

(ख) सम्भ्रमेण—वेग से। प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम् इति वार्तिकेन तृत या विभक्तिः।

(ग) निष्क्रामन्—क्रम पाद विक्षेप। निः + क्रम् + शतृ प्रत्यय, निकलता हुआ।

पद्य ८—

(क) अस्मि—यहाँ भूतकाल के अर्थ में लट्‌लकार हुआ है।

(ख) बोधयित्वा—जगाकर। √बुद्ध + णिच् + क्त्वा कृदन्त प्रत्यय।

(ग) पूर्वम्—यह क्रिया विशेषण है।

पद्य ९—

(क) विभ्रम्—चित्त का विक्षेप। वि√भ्रम + घञ्। यहाँ नोदत्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः इस सूत्र के द्वारा वृद्धि का निषेध हो गया।

यहाँ राजा स्वप्न या विभ्रम की अवस्था चिरकाल तक स्थायित्व प्रदान करना चाहता है। क्योंकि सुखार्थी मनुष्य सदा वही अवस्था सुखकर मानता है, जिसमें उसे कुछ राहत मिलती है। वत्सराज को स्वप्न में ही वासवदत्ता के दर्शनों का सुख मिला। यदि इसे केवलमात्र भ्रम ही समझा जाय तो उसमें भी उसे अपूर्व सुख प्राप्त होता है। कौन चाहता है कि ऐसे सुख को हाथ से जाने दिया जाये ?

वास्तव में वत्सराज एक उदात्त धीरललित नायक है जिनका चरित्र स्वतः इन घटनाओं से निखर उठता है।

(ख) यक्षिणी—अप्सरा विशेषण जिसका सम्बन्ध मर्त्यलोकवासियों से कहा जाता है। यक्षः पूजां अस्ति अस्याः इति विग्रहे। यहाँ पर यक्ष + इति + ङीप होने पर यक्षिणी शब्द सिद्ध होता है।

पद्य १०—

(क) चारित्रम्—चरित्रमेव चारित्रम्, चरित्र + अण् (स्वार्थे)।

(ख) विबुद्धेन—जागे हुए। वि√बुध् + क्त। यहाँ पर 'मया' विशेष्य अप्रकट है।

पद्य ११—

(क) सन्त्रस्तया—भयभीत, सशंकित। सम्√त्रस् + क्त (कर्तरि) टाप्, तया। वासवदत्ता का भयभीत होना स्वाभाविक था कि कहीं राजा जाग न जाये।

(ख) निपिडितः—हल्के हाथों पकड़ा हुआ। नि√पीड् + णिच् + क्त।

अभिघातयितुं—मरवाने के लिये। अभि√हन् + णिच् + तुमुन् 'हो हन्तेः' इस सूत्र के द्वारा ह को घ आदेश हो गया।

पदाति—पैदल। पादाभ्याम् अतति गच्छति इति पदाति पाद√अत् + इण्। यहाँ पर 'पादस्य पदाज्याति गोपहतेषु' इस सूत्र के द्वारा पाद का अदादेश हो गया है।

आमकानि:—मम इमानि इति विग्रहे। अस्मद् + अण्। यहाँ 'तवकममका-वैकवचने' इस सूत्र में अस्मद् शब्द का ममकादेश हो गया।

सन्नद्धानि:—सज्जित, उद्यत, तैयार। सम् √नह् + क्त।

आर्यपुत्र:—आर्यस्य पुत्रः अर्थात् आर्य का पुत्र (षष्ठी तत्पुरुष) अथवा आर्यश्चासौ पुत्रश्च ऐसा विग्रह करने पर (कर्मधारय समास)।

पद्य १२—

(क) भिन्ना—एक-दूसरे से पृथक् कर दिये गये। भिद् + क्त। यह अन्तर्भावितण्यर्थ है। शत्रुओं में फूट डालना भी एक नीति है।

(ख) पौरो:—पुरवासी लोग। पुरे भवा: पौरा: तत्र भव: इस सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाने से पौर शब्द निष्पन्न हुआ।

(ग) पार्ष्णी—सेना का पृष्ठ भाग। यहाँ रात्रि: रात्री की तरह पर्ष्णि: पार्ष्णी 'कृदिकारदक्तिन:' सूत्र से ङीप् करने पर दोनों ही चलते हैं।

(घ) त्रिपथगा—त्रयाणां स्वर्गमर्त्यपातालात्मनां पथां मार्गाणां समाहार: त्रिपथम् तेन गच्छति या सा त्रिपथगा। त्रिपथ √गम् + ड टाप्। द्विगु समास।

(ङ) वत्सा:—वत्स देश। वत्सानां निवासो जनपद: वात्सा:, वत्स + अण् यहाँ पर 'तस्य निवास' सूत्र से अण् तथा उसका 'जनपदे लुप' से लोप हो गया। जनपदावली शब्दों का बहुवचनान्त ही प्रयोग शुद्ध है।

समाश्वासिता:— जिन्हें सान्त्वना दी गई हो। सम् आ √श्वस् + णिच् + क्त।

पद्य १३—

(क) उपेत्य—समीप जाकर या चढ़ाई करके। उप् + इ + क्त्वा।

(ख) युधि—युद्ध में। √युध् + क्विप्।

यहाँ युध् शब्द का पुल्लिग में प्रयोग मिलता है, ऐसा प्रतीत होता है कि भास के समय में इसका प्रयोग पुल्लिग में भी होता रहा होगा या 'निरंकुशा: कवय:' का अपुसरण उन्होंने किया है।

(ग) नाशयामि—नाश करता हूँ। √नश् + णिच् + लिट्-मिप्। यहाँ 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानबद्धा' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ में लट्लकार हुआ है।

(घ) नागेन्द्रतुरंगतीर्णे—जहाँ बड़े-बड़े हाथी और घोड़े तैयार रहे हों। नागा इन्द्रा: इव इति नागेन्द्रा: उपमितसमास नागेन्द्रश्च तुरगाश्च इति नागेन्द्रतुरगा: तै: तीर्ण: तस्मिन (तृतीया तत्पुरुष)।

(ङ) महार्णवाभे—महा समुद्र के समान दीप्तिमान्। महांश्चासौ अर्णव: महार्णव: (कर्मधारय, बहुव्रीहि समास) व्याख्या में द्रष्टव्य है।

(च) विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे— जहाँ बाण प्रक्षेप रूपी भयंकर लहरें उठ रही हों (कर्मधारय, बहुव्रीहि समास) व्याख्या में द्रष्टव्य है।

टिप्पणी—काञ्चनतोरणद्वार—राजप्रासाद का स्वर्णजटित मुख्य द्वार।

तत्कालीन समृद्धि का द्योतक है । आदेशकाल—प्रतिहारी की उक्ति में किसी विशिष्ट कार्य के लिये समय एवं स्थान की अनुपयुक्तता राजा की सुदृढ़ नीति का परिचायक है । घोषवती—उस वीणा का नाम है जिसे उदयन ने वासवदत्ता को उपहारस्वरूप दिया था और जिसका स्वर अन्य वीणा-स्वरों से अलग एवं उत्तम कोटि का था ।

नर्मदातीरे—नर्मदा नदी के तट पर, **कूर्चगुल्मलग्ना**—घास की झाड़ियों में पड़ी हुई, वासवदत्ता को प्रिय वीणा घोषवती जो सर्वदा उसके वक्ष से ही लगी रहती थी उसकी प्राप्ति वासवदत्ता से पुर्नमिलन का पूर्वाभ्यास कराती है । 'सूर्यामुख' नामक महल में ही शोक संतप्त राजा को घोषवती की प्राप्ति एक सहज संयोग है । जो नाटकीय परम्परा में रमणीयता आधान कराता है ।

पद्य ३—

चिरप्रसुप्तः कामः—बहुत दिनों से सोया हुआ प्यार (वासना) ।

प्रतिबोधितः—अर्थात् जाग्रत कर दी गई है ।

कलत्रदर्शनार्हं······बहुदोषमुत्पादयति--जिसे स्त्री देखने का अधिकार है यदि उसे वह नहीं दिखाई दी तो उसमें अनेकों दोष अर्थात् कई तरह की बातें पैदा होती हैं । जहाँ राजा की मानसिक पटुता का आभास मिलता है और वासवदत्ता (मृत) के सम्बन्धियों से मिलने के लिये पद्मावती को पास बैठाना समझो गार्हस्थ्य जीवन का परिचायक है ।

पद्य ४—

किम् वक्ष्यतीति—क्या कहेंगे ऐसा । यह उक्ति राजा के भयग्रस्त मनोभाव की द्योतक है । यहाँ नाटककार ने एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया है जो सर्वदा ही समाज विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्ति के भीतर अपने उत्तरदायित्व को न निभा पाने के पश्चात् उत्पन्न होता है ।

पद्य ५—

सम्बन्धिराज्यम्—सम्बन्धी राज्य । यहाँ इस उक्ति के दो अर्थ हो सकते हैं । प्रथम ऐसा राज्य जिससे गहरा सम्बन्ध हो । द्वितीय इससे पड़ोसी राज्य का भी बोध होता है । सम्बन्धी शब्द अधुना बोल चाल को भाषा में प्रचलित समधी शब्द का शुद्ध रूप है ।

गोपालकपालकौ—यह दोनों महासेन के पुत्र थे । प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अनुसार गोपालक अर्थशास्त्र (राजनीति) का पण्डित था और पालक ललितकलाओं का द्वेषी तथा व्यायाम का शोकीन था । "शूद्रक" की अमरकृति "मृच्छकटिक" में पालक उज्जयिनी के राजा के रूप में वर्णित है ।

अग्निसाक्षिकम्—अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तदग्निसाक्षिकं तथा न भवतीति नग्निसाक्षिकम् । अग्नि की साक्षी के बिना । यहाँ भारतीय परम्परा का सुरम्य संकेत है । भारतीय परम्परा में वर एवं वधु यज्ञीय अग्नि को साक्षी करके वेद मन्त्रों द्वारा प्रतिज्ञायें करते हैं और तब विवाह विधि सम्पन्न होती है ।

वीणाव्यपदेशेन—वीणा के बहाने वासवदत्ता को तुम्हें सौंप दिया था ।

चपलतया—चञ्चलता व अधीरता से।

प्रतिकृति—प्रति + कृ + क्तिन्। चित्र को।

पद्य १२—

राज्यलाभशतादपि—राज्यस्य लाभः राज्यलाभः (षष्ठी तत्पुरुष) राज्यलाभानां शतं राज्यलाभाशतं तस्मात् राज्यलाभशतात्। सौ राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्रिय हैं। यद्यपि उदयन ने अभी-अभी अपना राज्य वापिस लिया है, परन्तु वह अङ्गारवती के उपर्युक्त संदेश को ऐसे सैकड़ों राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्रिय समझता है।

पद्य १४—

कन्याभावे—कौमार्यावस्था में। लड़की शादी के पहले कुंआरी रहती है और पवित्रता की मूर्ति समझी जाती है। इसलिये वह विश्वासपात्र भी होती है और ब्राह्मण का अपनी बहन को न्यास रूप में कुंवारी पद्मावती के पास रखना इस बात की पुष्टि करता है।

पद्य १५—

प्रछाद्य—वासवदत्ता अग्नि में जलकर मर गई और उसे पद्मावती के पास गोपनीय ढंग से रख देना।

अर्थिस्वं······अपराध्यति—वासवदत्ता की यह उक्ति उसके अन्तरदाह को प्रकट करती है और असफल जीवन का नैराश्य इस उक्ति में भली-भांति प्रकट है।

रहस्य भेदन करने वाला यह अङ्क बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

भरतवाक्यम्—भरत नाटच-प्रणाली के अनुसार भरतवाक्य से ही नाटक की समाप्ति होनी चाहिये। भरतवाक्य दशरूपक के अनुसार—'प्रशस्तिः शुभशंसनम्' प्रशंसावाचक अथवा मङ्गलात्मक होना चाहिये ॥१९॥

———

परिशिष्ट (१)

पारिभाषिक शब्दों की परिभाषाएँ

(१) नाटक—आचार्य विश्वनाथ पंचानन के अनुसार नाटक की परिभाषा इस प्रकार है :—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसंधिसमन्वितम् ।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ।।
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ।।
ख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ।।
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।।
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्या व्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ।।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति—"नटन्तीति नाटकाः" इस अर्थ में "णट् नृतौ" धातु से, "ण्वुल तृचौ" सूत्र द्वारा ण्वुल प्रत्यय तथा "युवोरनाकौ" "अङ्क" आदेश होकर नाटक शब्द की सिद्धि होती है।

"नाटका अभिनेतारः सन्ति यस्मिंस्तत् नाटकम् ।।"

अर्थात् नाटक (अभिनय करने वाले) व्यक्ति जिसमें रहते हैं, उस काव्यविशेष को नाटक कहते हैं। इस व्युत्पत्ति में नाटक शब्द से "अर्श आदिभ्योऽच्" सूत्र द्वारा अच् प्रत्यय होकर नाटक पद निष्पन्न होता है। पाणिनि के धातु पाठ में "णट् नृतौ" इस धातु का प्रयोग दो बार किया गया है। प्रथम धातु का अर्थ है—"वाक्यार्थ का अभिनय रूप नाट्य"—जो कि नट द्वारा सम्पादित होता है और द्वितीय बार पठित धातु का अर्थ है—"पदार्थ का अभिनय रूप नृत्य" जोकि नर्तक द्वारा सम्पन्न होता है। वस्तुतः नाटक के नट के द्वारा वाक्यार्थ और पदार्थ दोनों का अभिनय होता है।

(२) नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।

अर्थात् नान्दी पाठ में देव, द्विज एवं नृप आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है, इसीलिए उस मांगलिक या आशीर्वादात्मक पद्य को नान्दी कहते हैं। इसी भांति नान्दी की अन्य परिभाषाएँ उपलब्ध होती हैं—

(क) देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा ।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दी प्रकीर्तिता ।।

(ख) आशीर्नमस्क्रियारूप: श्लोक: काव्यार्थसूचक: ।
नान्दीपदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलंकृता ॥

नान्दी पद की व्युत्पत्ति—नन्दति देवा अस्याम् या—नन्दयति—आनन्दयति लोकान् इति नान्दी,—शुभाशंसनेन लोकानन्दजननात् ॥

(३) सूत्रधार—

नाट्यप्रयोगनिपुणो नानाशिल्पकलान्वित: ।
छन्दोविधानतत्त्वज्ञस्सर्वशास्त्रविचक्षणा: ॥
तत्तद्गीतानुलयकलातालावधारण: ।
अवधाय प्रयोक्ता च योक्तृणामुपदेशक: ॥
एवं गुणगणोपेतस्सूत्रधारोऽभिधीयते ।

सूत्रधार शब्द की व्युत्पत्ति—सूत्रं नाटचसूत्रं धारयतीति सूत्रधार: । इस व्युत्पत्ति के आधार पर निम्न परिभाषाएँ भी की गई हैं—

(क) नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

(ख) नाटकीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते ।
रङ्गभूमि समाक्रम्य "सूत्रधार:" स उच्यते ॥

(४) प्रस्तावना—इसे आमुख एवं स्थापना भी कहते हैं ।

(क) सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षवाऽथ विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुतांक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥
प्रस्तावना वा । दशरूपक-प्रकाश ३ ७८—

(ख) नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिता संलापं यत्र कुर्वते ।
चित्तैर्वाक्यै: स्वकार्योत्थै: प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ:
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि वा ॥ साहित्यदर्पण

विशेष—भास ने प्रस्तुत (स्वप्नवासवदत्तम्) नाटक में "स्थापना" का समावेश किया है । "स्थाप्यते प्रस्तूयते कथावस्तु अस्याम्" इति स्थापना—इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें नाटक की कथावस्तु प्रस्तावित या—स्थापित की जाय उसे "स्थापना" कहते हैं । नाट्यशास्त्रकारों के अनुसार स्थापना शब्द प्रस्तावना का पर्यायवाची है— "प्रस्तावनाओं" में से "प्रवर्तक" नाम की प्रस्तावना का प्रयोग किया है, जिसका लक्षण निम्नलिखित है—

कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम् ॥ साहित्यदर्पण

(५) नेपथ्य—इसके तीन अर्थ हैं—

(क) नट की वेषभूषा—"रामादिव्यञ्जको वेषो नटे नेपथ्यमुच्यते"।

(ख) पर्दा—"नेपथ्यं स्याज्जवनिका"।

(ग) रंगभूमि।

(६) प्रवेशक—प्रवेशक एक प्रकार की दो अङ्कों के बीच की अन्तर्वार्ता है, जिसमें कि तृतीय श्रेणी के पात्रों के वार्तालाप द्वारा संक्षेप में भूत या भविष्यत् के कथांशों का निर्देश कर उनके परस्पर सम्बन्ध को प्रकट किया जाता है। प्रवेशक भी एक प्रकार का विषकम्भक ही है। यद्यपि दोनों में लघु सा अन्तर है। यह अन्तर दोनों के लक्षणों से स्पष्ट हो जाता है :—

(क) प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्यानीच पात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

(ख) वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भः आदावङ्कस्य दर्शितः॥

विशेष—विष्कम्भक एवं प्रवेशक में अन्तर—

१. विष्कम्भक प्रथम अङ्क के पहले आ सकता है—जबकि प्रवेशक दो अङ्कों के बीच में ही आता है।

२. विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के ही पात्र होते हैं जो संस्कृत बोलते हैं। परन्तु प्रवेशक में तृतीय श्रेणी के ही पात्र होते हैं जो तत्कालीन बोलचाल की ग्रामीण बोलियों में बोलते हैं।

भास ने "स्वप्नवासवदत्तम्" में "प्रवेशक" तथा मिश्रविष्कम्भक का प्रयोग किया है। जहाँ मध्यम तथा नीच पात्रों का प्रयोग हो वह मिश्रविष्कम्भक कहलाता है।

(७) कञ्चुकी—इसे काञ्चुकीय भी कहा जाता था। यह राजाओं के अन्तःपुर की देख-रेख का कार्य सम्भालता है और उनकी रानियों का आदेश पालन करता है। धार्मिक व सच्चरित ब्राह्मण ही कञ्चुकी हो सकता है। वह सदा एक लम्बा लबादा पहने हुये तथा हाथ में एक राजकीय छड़ी लिये चलता है। लक्षण—

(क) अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कांचुकीत्यभिधीयते॥

(ख) ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥

(८) विदूषक—यह हास्यप्रधान पात्र है, जो विचित्र बातें कहकर नाटक के नायक का सदैव मनोरञ्जन किया करता है और विशेष रूप से प्रणय आदि कार्यों में उसकी सहायता करता है। यह अपनी बुद्धि-कौशल से नायक को अनेक विपत्तियों से भी बचाता है विदूषक प्रायः भोजनप्रिय (पेटू) ब्राह्मण होता है और इसे वसन्तक आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। लक्षण—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिविदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥ साहित्यदर्पण

विशेष—"स्वप्नवासवदत्तम्" में राजा विदूषक को "वसन्तक" नाम से सम्बोधित करता है।

(९) स्वगतम्—अश्राव्यं स्वगतं मतम्। दशरूपक-प्रकाश, १–६४
"स्वगतम्" को "आत्मगतम्" भी कहते हैं। "स्वगतं स्वहृदि स्थितम्"।

(१०) प्रकाशम्—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। दशरूपक प्रकाश, १–६५ अथवा "प्रकाशं ज्ञाप्यमन्येषाम्"।

(११) जनान्तिकम्—अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्।

—दशरूपक प्रकाश, १–६६

(१२) अपवारितम्—

·········तद्भवेदपवारितम्।
रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते ॥
त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥

(१३) आकाशे अथवा आकाशभाषित—आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विनापात्रं ब्रवीतियत्।
श्रुत्वेवनुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥

—दशरूपक प्रकाश, १-६७

(१४) भरतवाक्यम्—संस्कृत नाटकों की यह परम्परा है कि उनका आरम्भ "नान्दीपाठ" के मंगलमय संगीत से तथा अन्त भरतवाक्य की कल्याणमयी कामना से हुआ करता है। इसी को "प्रशस्ति" कहते हैं जो निर्वहण संधि का अंग है।

प्रशस्ति का लक्षण—प्रशस्तिः शुभशंसनम्। दशरूपक प्रकाश, १—१४

अथवा—नृपदेशादि शान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते।

विशेष—यह प्रशस्ति अनुकर्त्ता भरत अर्थात् नट के मुख से निःसृत होती है अतः भरतवाक्य कहलाती है। कतिपय मनीषियों के अनुसार नाट्याचार्य "भरत" के वाक्य द्वारा प्रतिपादित होने के कारण इसका नाम भरतवाक्य पड़ा है।

परिशिष्ट–२

स्वप्नवासवदत्तम् के सूक्तिरत्न

प्रथम अङ्क

१. अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यधूयन्ते ।

२. काल क्रमेण जगतः परिवर्तमाना—
चक्रापंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ।

३. न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।

४. नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते–
वनमभिगम्य मतस्विनो वसन्ति ।

५. तथा परिश्रमः परिखेदं नीत्यादयति यथ यं परिभवः ।

६. तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वगेहम् ।

७. प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।

८. दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ।

९. सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

१०. धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता,—
भर्तृस्नेहान् सा हि दग्धाप्यदग्धा ।

११. तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनोनराधिपः ।

१२. न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ।

द्वितीय अङ्क

१. निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीः कालः ।

२. सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।

३. आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुष—
हृदयानि भवन्ति ।

४. अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् ।

तृतीय अङ्क

१. अकरुणाः खल्वीश्वराः ।

२. अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।

३. धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति ।

४. अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् ।

चतुर्थ अङ्क

१. अज्ञातवासोऽपि बहुगुणः सम्पद्यते ।

२. गुणानां वा विशानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥

३. दत्तं चेतनं परिखेदस्य ।

४. दुखं यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः—
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद्विच्येह्र वाष्पं—
प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥

५. सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्ट, प्रीतिमुत्पादयति ।

६. सदाक्षिण्स्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति ।

७. स्त्रीस्वभावस्तु कातरः।

८. सुखं नामयपरिभूतकमकल्यवर्तं च ।

पञ्चम अङ्क

१. प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयन शीघ्रं स्वयं मुञ्चसि ।

२. अकरणाः खल्वीश्वराः ।

३. अन्य सनपरिग्रहेणाल्प इद स्नेहः प्रतिभाति ।

षष्ठ अङ्क

१. कातरा येऽथशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥

२. कलत्रदर्शनार्हं जन कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति ।

३. न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ।

४. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले, रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यदे रुह्यते च ॥

५. अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ।

६. परस्परगता लोके दृश्यते तुल्यरूपता ।

७. सान्निमन्यासो निर्यातयितव्यः ।

८. आर्थित्वं नाम शरीरमपराध्यति ।

—·——

परिशिष्ट—३

भास के भाषा सम्बन्धी विशिष्ट प्रयोग

	प्रथम अङ्क
१. आपृच्छामि भवन्तौ	,,
२. विनयादपेतपुरुषः	,,
३. सुखमर्थो भवेद्दातु इत्यादि	,,
४. न श्लिष्यते मे मनसि	,,
५. देशागतप्रत्ययाः	तृतीय अङ्क
६. कः काल त्वां अन्विष्यामि	चतुर्थ अङ्क
७. प्रचितपतित बन्धुजीवकुसुम···इत्यादि···	,,
८. वाष्पा कुलपटान्तरितम्	,,
९. मधुकर पविनीलाम्···	,,
१०. मा भूयोऽवचित्य	,,
११. मेदानीमन्यथा चिन्तयित्वा	पञ्चम अ
१२. मेदानीं भवाननर्थंचिन्तयित्वा	,,
१३. धरते खलु वासवदत्ता	षष्ठ
१४. सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः	,,
१५. स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः	चतुर्थं
१६. स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःख नवत्वम्	
१७. आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुम समृद्धि दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम्	
१८. अर्धमन शिलाट्टपर्कैश्च शेफालिका पूरितं मेञ्जलिम्	

नोट—इन प्रयोगों की विशेषतायें यथासम्भव व्याकरणात्मक टिप
स्पष्ट की गई हैं।

———

महाकविश्रीभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

(गवेषणात्मक भूमिका, हिन्दी-अनुवाद, संस्कृत टीका
विशेष टिप्पणी तथा परिशिष्ट सहित)

...योगी की विशेषता...
...ई है।

97963215